समरथ

सितंबर-अक्टूबर 2011 ◆ नई दिल्ली

शिशु सुलभ सहज मुस्कान लिये
शायद तुम हम पर हँसते हो!
छोड़ो, इस दिल में क्या-क्या है
नाहक ही अंदर धँसते हो!
बाहर वेदी पर जमे रहो
जय-जय हे पूजा के प्रतीक!
अपना पाएँगे कैसे हम
फिर सत्याग्रह की वही लीक?
खादी के गमछे में लिपटी
सत्तर-साला बूढ़ी शरीर?
बतला दो बापू, क्या थे तुम
चर्खा, तकली, झोला, कुटीर?
दिन-दिन पदयात्रा, कर्महीन
चिंतन का केवल चमत्कार
बतला दो बापू, क्या थे तुम
गोरस-मधुसेवन, फलाहार?
सूत्रांजलि, प्रवचन, पद-गायन
फिर ईश्वर-अल्ला की पुकार?
बतला दो बापू, क्या थे तुम
केवल विचार, केवल प्रचार?
गाँधी-मत की चर्चा-वर्चा
एतन्निमित्त शतलक्ष हवन
सर्वोदय का चतुरंग सैन्य
अतिसज्जित ग्रामोद्योग भवन।
श्रद्धा-दोहन की नई रीति
नूतन मठ का नव परिष्कार
बतला दो बापू, क्या थे तुम
जीवनदानी का नभ-विहार?
शासक वर्गों से साँठ-गाँठ
प्रभुता का, वैभव का प्रयाग!
बतला दो बापू, क्या थे तुम
वृद्धावस्था का भोग-राग?
युवकों पर पग-पग पाबंदी
तरुणों का कुंठित ताप-गान?
बतला दो बापू, क्या थे तुम
बूढ़े धूर्तों का साम गान?
हम प्रतिपल तुमको ठगते थे
ओ विश्वात्मा, ओ व्यक्तिरूप!
तुम अब भी करुणा-सागर हो
हम खारे जल के वही कूप!
तुम पर जिससे नफ़रत सुलगी
वह दृष्टि यहीं है साथ-साथ
तुम पर जिनसे पिस्तौल दगी,
बापू, ये मेरे वही हाथ!
क्षण-भर कहकर 'ईश्वर-अल्ला'
बकता जाऊँ कुछ भी अबाध
हत्यारा कह दूँ जिस-तिस को,
खुद को मैं मानूँ निरपराध।

नाहि तो जनम नसाई

गांधी जी के लिए इससे बड़ा अपमान और क्या हो सकता है कि कोई व्यक्ति लोगों को सरेआम फांसी पर लटकाने के लिए कहे, युद्ध लड़े और 72 साल की उम्र में कश्मीर मसले पर युद्ध छेड़ने की और बंदूक उठाने की बात करे और स्वयं को गांधीवादी भी कहे। इतना ही नहीं बिहार और उत्तर प्रदेश के लोगों का मुंबई में रहना भी इस गांधीवादी को कष्ट देता है। गांधीवाद को मात्र अनशन और शाकाहार तक सीमित करके हर तरह की हिंसा का समर्थन करने वाले ये व्यक्ति हैं अन्ना हजारे।

- गांधी ने कहा गरीबी सबसे बड़ी हिंसा है।
- नवाखाली सांप्रदायिक दंगों के दौरान एक व्यक्ति गांधी के पास आया और उन्हें बताया कि मुस्लिमों ने उसके परिवार के एक सदस्य को मारा था इसलिए उसने एक मुस्लिम बच्चे की हत्या कर उसका बदला लिया। गांधी ने उस व्यक्ति से कहा : इस कृत्य का प्रायश्चित तुम एक मुस्लिम अनाथ बच्चे को अपना कर करो और उसकी परवरिश उसी तरह करो जिस तरह उसके मां-बाप करते।
- गांधी दलितों के अधिकारों के लिए लड़े (जिन्हें वे हरिजन यानी ईश्वर के पुत्र कहते थे)।
- गांधी हमेशा अहिंसा की बात करते थे।
- अन्ना गरीबी पर कभी नहीं बोले।
- अन्ना नरेन्द्र मोदी की तारीफ करते हैं जो हजारों मुस्लिमों की हत्या का जिम्मेदार है। अन्ना कभी भी सांप्रदायिकता के खिलाफ नहीं बोले। और बात केवल नरेंद्र मोदी तक ही सीमित नहीं है देश में जितने भी सांप्रदायिक दंगे हुए उस पर अन्ना मौन व्रत ही लिए रहे। यहां एक बात और भी महत्वपूर्ण है कि टीम अन्ना में कोई अल्पसंख्यक, दलित या आदिवासी नहीं है।
- अन्ना कभी भी दलितों के पक्ष में नहीं बोले और ठेठ ब्राह्मणवादी व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं।
- अन्ना युद्ध लड़ते हैं। कश्मीर मामले पर आज भी युद्ध लड़ने को तैयार हैं। भ्रष्टाचार में लिप्त व्यक्तियों को सरेआम फांसी देने की वकालत करते हैं।
- अन्ना कभी भी परमाणवीकरण के खिलाफ नहीं बोले।

गांधी क्या थे ये नागार्जुन की जबानी सुन लेते हैं और इस गांधीवाद पर अन्ना कितना खरे उतरते हैं ये निर्णय आप करें।

बतला दो बापू, क्या थे तुम?

■ **नागार्जुन**

शिशु सुलभ सहज मुस्कान लिये
शायद तुम हम पर हँसते हो!
छोड़ो, इस दिल में क्या-क्या है
नाहक ही अंदर धँसते हो!
बाहर वेदी पर जमे रहो
जय-जय हे पूजा के प्रतीक!
अपना पाएँगे कैसे हम
फिर सत्याग्रह की वही लीक?
खादी के गमछे में लिपटी
सत्तर-साला बूढ़ी शरीर?
बतला दो बापू, क्या थे तुम
चर्खा, तकली, झोला, कुटीर?

दिन-दिन पदयात्रा, कर्महीन
चिंतन का केवल चमत्कार
बतला दो बापू, क्या थे तुम
गोरस-मधुसेवन, फलाहार?
सूत्रांजलि, प्रवचन, पद-गायन
फिर ईश्वर-अल्ला की पुकार?
बतला दो बापू, क्या थे तुम
केवल विचार, केवल प्रचार?
गाँधी-मत की चर्चा-वर्चा
एतन्निमित्त शतलक्ष हवन
सर्वोदय का चतुरंग सैन्य
अतिसज्जित ग्रामोद्योग भवन।
श्रद्धा-दोहन की नई रीति
नूतन मठ का नव परिष्कार
बतला दो बापू, क्या थे तुम
जीवनदानी का नभ-विहार?
शासक वर्गों से साँठ-गाँठ
प्रभुता का, वैभव का प्रयाग?
बतला दो बापू, क्या थे तुम
वृद्धावस्था का भोग-राग?
युवकों पर पग-पग पाबंदी
तरुणों का कुंठित ताप-मान?
बतला दो बापू, क्या थे तुम
बूढ़े धूर्तों का साम गान?
हम प्रतिपल तुमको ठगते थे
ओ विश्वात्मा, ओ व्यक्तिरूप!
तुम अब भी करुणा-सागर हो
हम खारे जल के वही कूप!
तुम पर जिससे नफ़रत सुलगी
वह दृष्टि यहीं है साथ-साथ
तुम पर जिनसे पिस्तौल दगी,
बापू, ये मेरे वही हाथ!
क्षण-भर कहकर 'ईश्वर-अल्ला'
बकता जाऊँ कुछ भी अबाध
हत्यारा कह दूँ जिस-तिस को,
खुद को मैं मानूँ निरपराध!
इस 'क्रांति-शांति' के नाटक से
सच कह दूँ, मैं तो गया ऊब!

ब्राह्मणशाही की दलदल में
लो, बापू, फिर हम गए डूब।
इस प्रजातंत्र पर हैं सवार
नव रूढ़िवाद, नव जातिवाद
प्रभुओं के नव-नव गात्र ढले
फैले ताज़े दंगा-फ़साद।
निर्वाचन के हो-हल्ले में
खो गया हाय बहरा विवेक
आपाधापी में सबकी है-
कैसे भी जीतूँ, यही टेक!
इस रेल-पेल में, सोचो तो,
कैसे लगते हैं जिला-दान!
मैं समझ न पाया हूँ अब तक
वह हीनयान, यह महायान!
मैं नाम तुम्हारा बेचूँगा
मारूँगा तुमको रोज़-रोज़
बापू! तुमको जो अप्रिय थे
वह काम करूँगा खोज-खोज।
यरवदा चक्र पर कातूँगा
सूतों के लच्छे सुबह-शाम
तुम रजत-रूप में कैद रहो
जी, नित्य करूँगा मैं प्रणाम।
फिर तो अपनी कोठी होगी
चमकीली होगी नई कार
नाती-पोती बहकेंगे तो
बहुएँ लेंगी उनको सुधार।
दुनिया-भर को दिखलाऊँगा
चिंतन का अद्‌भुत चमत्कार
फिर नियमित मुझे सुलभ होंगे
गोरस-मधुसेवन-फलाहार।
शिशु-सुलभ सहज मुस्कान लिये
शायद तुम हम पर हँसते हो!
छोड़ो, इस दिल में क्या-क्या है,
नाहक ही अंदर धँसते हो!

1969, तुमने कहा था

साभार : नागार्जुन रचनावली भाग-2

मैं अन्ना नहीं होना चाहूंगी : अरुंधती राय

उनके तौर-तरीके भले ही गांधीवादी हों मगर उनकी मांगें निश्चित रूप से गांधीवादी नहीं हैं।

जो कुछ भी हम टी.वी. पर देख रहे हैं अगर वह सचमुच क्रान्ति है तो हाल फिलहाल यह सबसे शर्मनाक और समझ में न आने वाली क्रान्ति होगी. इस समय जन लोकपाल बिल के बारे में आपके जो भी सवाल हों उम्मीद है कि आपको ये जवाब मिलेंगे : किसी एक पर निशान लगा लीजिए - (अ) वन्दे मातरम, (ब) भारत माता की जय, (स) इंडिया इज अन्ना, अन्ना इज इंडिया, (द) जय हिंद।

आप यह कह सकते हैं कि, बिल्कुल अलग वजहों से और बिल्कुल अलग तरीके से, माओवादियों और जन लोकपाल बिल में एक बात सामान्य है। वे दोनों ही भारतीय राज्य को उखाड़ फेंकना चाहते हैं। एक नीचे से ऊपर की ओर काम करते हुए, मुख्यतया सबसे गरीब लोगों से गठित आदिवासी सेना द्वारा छेड़े गए सशस्त्र संघर्ष के ज़रिए, तो दूसरा ऊपर से नीचे की तरफ काम करते हुए ताज़ा-ताज़ा गढ़े गए एक संत के नेतृत्व में, अहिंसक गांधीवादी तरीके से जिसकी सेना में मुख्यतया शहरी और निश्चित रूप से बेहतर ज़िंदगी जी रहे लोग शामिल हैं। (इस दूसरे वाले में सरकार भी खुद को उखाड़ फेंके जाने के लिए हर संभव सहयोग करती है।)

अप्रैल 2011 में, अन्ना हजारे के पहले आमरण अनशन के कुछ दिनों बाद भ्रष्टाचार के बड़े-बड़े घोटालों से, जिसने सरकार की साख को चूर-चूर कर दिया था, जनता का ध्यान हटाने के लिए सरकार ने टीम अन्ना को (सिविल सोसायटी ग्रुप ने यही ब्रांड नाम चुना है) नए भ्रष्टाचार विरोधी कानून की ड्राफ्टिंग कमेटी में शामिल होने का न्योता दिया। कुछ महीनों बाद ही इस कोशिश को धता बताते हुए उसने अपना खुद का विधेयक संसद में पेश कर दिया जिसमें इतनी कमियाँ थीं कि उसे गंभीरता से लिया ही नहीं जा सकता था।

फिर अपने दूसरे आमरण अनशन के लिए तय तारीख 16 अगस्त की सुबह, अनशन शुरू करने या किसी भी तरह का अपराध करने के पहले ही अन्ना हजारे को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया। जन लोकपाल बिल के लिए किया जाने वाला संघर्ष अब विरोध करने के अधिकार के लिए संघर्ष और खुद लोकतंत्र के लिए संघर्ष से जुड़ गया। इस आज़ादी की दूसरी लड़ाई के कुछ ही घंटों के भीतर अन्ना को रिहा कर दिया गया। उन्होंने होशियारी से जेल छोड़ने से इन्कार कर दिया, बतौर एक सम्मानित मेहमान तिहाड़ जेल में बने रहे और किसी सार्वजनिक स्थान पर अनशन करने के अधिकार की मांग करते हुए वहीं पर अपना अनशन शुरू कर दिया। तीन दिनों तक जबकि तमाम लोग और टी.वी. चैनलों की वैन बाहर जमी हुई थीं, टीम अन्ना के सदस्य उच्च सुरक्षा वाली इस जेल में अन्दर-बाहर डोलते रहे और देश भर के टी.वी. चैनलों पर दिखाए जाने के लिए उनके वीडियो सन्देश लेकर आते रहे। (यह सुविधा क्या किसी और को मिल सकती है?) इस बीच दिल्ली नगर निगम के 250 कर्मचारी, 15 ट्रक और 6 जेसीबी मशीनें कीचड़ युक्त रामलीला मैदान को सप्ताहांत के बड़े तमाशे के लिए तैयार करने में दिन रात लगे रहे. अब कीर्तन करती भीड़ और क्रेन पर लगे कैमरों के सामने, भारत के सबसे महंगे डाक्टरों की देख-रेख में, बहुप्रतीक्षित अन्ना के आमरण अनशन का तीसरा दौर शुरू हो चुका है. टी.वी. उद्घोषकों ने हमें बताया कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक भारत एक है।

उनके तौर-तरीके गांधीवादी हो सकते हैं मगर अन्ना हजारे की मांगें कतई गांधीवादी नहीं हैं। सत्ता के विकेंद्रीकरण के गांधी जी के विचारों के विपरीत जन लोकपाल बिल एक कठोर भ्रष्टाचार निरोधी कानून है जिसमें सावधानीपूर्वक चुने गए लोगों का एक दल हजारों कर्मचारियों वाली एक बहुत बड़ी नौकरशाही के माध्यम से प्रधानमंत्री, न्यायपालिका, संसद सदस्य, और सबसे निचले सरकारी अधिकारी तक यानी पूरी नौकरशाही पर नियंत्रण रखेगा। लोकपाल को जांच करने, निगरानी करने और अभियोजन की शक्तियां प्राप्त होंगी। इस तथ्य के अतिरिक्त कि उसके पास खुद की जेलें नहीं होंगी यह एक स्वतंत्र निजाम की तरह कार्य करेगा, उस मुटाए, गैर-जिम्मेदार और भ्रष्ट निजाम के जवाब में जो हमारे पास पहले से ही है। एक की बजाए, बहुत थोड़े से लोगों द्वारा शासित दो व्यवस्थाएं।

यह काम करेगी या नहीं यह इस बात पर निर्भर करता है कि भ्रष्टाचार के प्रति हमारा दृष्टिकोण क्या है? क्या भ्रष्टाचार सिर्फ एक कानूनी सवाल, वित्तीय अनियमितता या घूसखोरी का मामला है या एक बेहद असमान समाज में सामाजिक लेन-देन की व्यापकता है जिसमें सत्ता थोड़े से लोगों के हाथों में संकेंद्रित रहती है? मसलन शॉपिंग मॉलों के एक शहर की कल्पना करिए जिसकी सड़कों पर फेरी लगाकर सामान बेचना प्रतिबंधित हो। एक फेरी वाली, हल्के के गश्ती सिपाही और नगर पालिका वाले को एक छोटी सी रकम घूस में देती है ताकि वह कानून के खिलाफ उन लोगों को अपने सामान बेंच सके जिनकी हैसियत शापिंग मालों में खरीददारी करने की नहीं है। क्या यह बहुत बड़ी बात होगी? क्या भविष्य में उसे लोकपाल के प्रतिनिधियों को भी कुछ देना पड़ेगा? आम लोगों की समस्याओं के समाधान का रास्ता ढांचागत असमानता को दूर करने में है या एक और सत्ता केंद्र खड़ा कर देने में जिसके सामने लोगों को झुकना पड़े। अन्ना की क्रान्ति का मंच और नाच, आक्रामक राष्ट्रवाद और झंडे लहराना सब कुछ आरक्षण विरोधी प्रदर्शनों, विश्व कप जीत के जुलूसों और परमाणु परीक्षण के जश्नों से उधार लिया हुआ है। वे हमें इशारा करते हैं कि अगर हमने अनशन का समर्थन नहीं किया तो हम सच्चे भारतीय नहीं हैं। चौबीसों घंटे चलने वाले चैनलों ने तय कर लिया है कि देश भर में और कोई खबर दिखाए जाने लायक नहीं है।

यहाँ अनशन का मतलब मणिपुर की सेना को केवल शक की बिना पर हत्या करने का अधिकार देने वाले कानून के खिलाफ इरोम शर्मिला के अनशन से नहीं है जो दस साल तक चलता रहा (उन्हें अब जबरन भोजन दिया जा रहा है)। अनशन का मतलब कोडनकुलम

के दस हजार ग्रामीणों द्वारा परमाणु बिजली घर के खिलाफ किए जा रहे क्रमिक अनशन से भी नहीं है जो इस समय भी जारी है। जनता का मतलब मणिपुर की जनता से नहीं है जो इरोम के अनशन का समर्थन करती है। वे हजारों लोग भी इसमें शामिल नहीं हैं जो जगतसिंहपुर या कलिंगनगर या नियमगिरि या बस्तर या जैतपुर में हथियारबंद पुलिसवालों और खनन माफियाओं से मुकाबला कर रहे हैं। जनता से हमारा मतलब भोपाल गैस त्रासदी के पीड़ितों और नर्मदा घाटी के बांधों के विस्थापितों से भी नहीं होता। अपनी ज़मीन के अधिग्रहण का प्रतिरोध कर रहे नोएडा या पुणे या हरियाणा या देश में कहीं के भी किसान जनता नहीं हैं।

जनता का मतलब सिर्फ उन दर्शकों से है जो 74 साल के उस बुजुर्गवार का तमाशा देखने जुटी हुई है जो धमकी दे रहे हैं कि वे भूखे मर जाएंगे यदि उनका जन लोकपाल बिल संसद में पेश करके पास नहीं किया जाता। वे दसियों हजार लोग जनता हैं जिन्हें हमारे टी.वी. चैनलों ने करिश्माई ढंग से लाखों में गुणित कर दिया है, ठीक वैसे ही जैसे ईसा मसीह ने भूखों को भोजन कराने के लिए मछलियों और रोटी को कई गुना कर दिया था। एक अरब लोगों की आवाज़ हमें बताया गया, इंडिया इज अन्ना।

वह सचमुच कौन हैं, यह नए संत, जनता की यह आवाज़? आश्चर्यजनक रूप से हमने उन्हें ज़रूरी मुद्दों पर कुछ भी बोलते हुए नहीं सुना है। अपने पड़ोस में किसानों की आत्महत्याओं के मामले पर या थोड़ा दूर आपरेशन ग्रीन हंट पर, सिंगूर, नंदीग्राम, लालगढ़ पर, पास्को, किसानों के आन्दोलन या सेज़ के अभिशाप पर, इनमें से किसी भी मुद्दे पर उन्होंने कुछ भी नहीं कहा है। शायद मध्य भारत के वनों में सेना उतारने की सरकार की योजना पर भी वे कोई राय नहीं रखते। हालांकि वे राज ठाकरे के मराठी माणूस गैर-प्रान्तवासी द्वेष का समर्थन करते हैं और वे गुजरात के मुख्यमंत्री के विकास मॉडल की तारीफ भी कर चुके हैं जिन्होनें 2002 में मुस्लिमों की सामूहिक हत्याओं का इंतजाम किया था। (अन्ना ने लोगों के कड़े विरोध के बाद अपना वह बयान वापस ले लिया था मगर संभवतः अपनी वह सराहना नहीं।)

इतने हंगामे के बावजूद गंभीर पत्रकारों ने वह काम किया है जो पत्रकार किया करते हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के साथ अन्ना के पुराने रिश्तों की स्याह कहानी के बारे में अब हम जानते हैं। अन्ना के ग्राम समाज रालेगान सिद्धि का अध्ययन करने वाले मुकुल शर्मा से हमने सुना है कि पिछले 25 सालों से वहां ग्राम पंचायत या सहकारी समिति के चुनाव नहीं हुए हैं। हरिजनों के प्रति अन्ना के रुख को हम जानते हैं : महात्मा गांधी का विचार था कि हर गाँव में एक चमार, एक सुनार, एक लुहार होने चाहिए और इसी तरह से और लोग भी। उन सभी को अपना काम अपनी भूमिका और अपने पेशे के हिसाब से करना चाहिए, इस तरह से हर गाँव आत्म-निर्भर हो जाएगा। रालेगान सिद्धि में हम यही तरीका आजमा रहे हैं। क्या यह आश्चर्यजनक है कि टीम अन्ना के सदस्य आरक्षण विरोधी (और योग्यता समर्थक) आन्दोलन यूथ फॉर इक्वेलिटी से भी जुड़े रहे हैं? इस अभियान की बागडोर उन लोगों के हाथ में है जो ऐसे भारी आर्थिक अनुदान पाने वाले गैर सरकारी संगठनों को चलाते हैं जिनके दानदाताओं में कोका कोला और लेहमन ब्रदर्स भी शामिल हैं। टीम अन्ना के मुख्य सदस्यों में से अरविन्द केजरीवाल और मनीष सिसोदिया द्वारा चलाए जाने वाले कबीर को पिछले तीन सालों में फोर्ड फाउंडेशन से 4,00,000 डॉलर मिल चुके हैं। इंडिया अगेंस्ट करप्शन अभियान के अंशदाताओं में ऐसी भारतीय कम्पनियां और संस्थान शामिल हैं जिनके पास अल्युमिनियम कारखाने हैं, जो बंदरगाह और सेज़ बनाते हैं, जिनके पास भू-संपदा के कारोबार हैं और जो करोड़ों करोड़ रुपए के वित्तीय साम्राज्य वाले राजनीतिकों से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। उनमें से कुछ के खिलाफ भ्रष्टाचार एवं अन्य अपराधों की जांच भी चल रही है। आखिर वे इतने उत्साह में क्यों हैं?

याद रखिए कि विकीलीक्स द्वारा किए गए शर्मनाक खुलासों और एक के बाद दूसरे घोटालों के उजागर होने के समय ही जन लोकपाल बिल के अभियान ने भी ज़ोर पकड़ा. इन घोटालों में 2 जी स्पेक्ट्रम घोटाला भी था जिसमें बड़े कारपोरेशनों, वरिष्ठ पत्रकारों, सरकार के मंत्रियों और कांग्रेस तथा भाजपा के नेताओं ने तमाम तरीके से सांठ-गांठ करके सरकारी खजाने का हजारों करोड़ रुपया चूस लिया। सालों में पहली बार पत्रकार और लॉबिंग करने वाले कलंकित हुए और ऐसा लगा कि कॉरपोरेट इंडिया के कुछ प्रमुख नायक जेल के सींखचों के पीछे होंगे. जनता के भ्रष्टाचार-विरोधी आन्दोलन के लिए बिल्कुल सटीक समय। मगर क्या सचमुच?

ऐसे समय में जब राज्य अपने परम्परागत कर्तव्यों से पीछे हटता जा रहा है और निगम और गैर सरकारी संगठन सरकार के क्रिया कलापों को अपने हाथ में ले रहे हैं (जल एवं विद्युत् आपूर्ति, परिवहन, दूरसंचार, खनन, स्वास्थ्य, शिक्षा); ऐसे समय में जब कॉरपोरेट के स्वामित्व वाली मीडिया की डरावनी ताकत और पहुँच लोगों की कल्पना शक्ति को नियंत्रित करने की कोशिश में लगी है; किसी को सोचना चाहिए कि ये संस्थान भी--निगम, मीडिया और गैर सरकारी संगठन -- लोकपाल के अधिकार-क्षेत्र में शामिल किए जाने चाहिए। इसकी बजाए प्रस्तावित विधेयक उन्हें पूरी तरह से छोड़ देता है।

अब औरों से ज़्यादा तेज़ चिल्लाने से, ऐसे अभियान को चलाने से जिसके निशाने पर सिर्फ दुष्ट नेता और सरकारी भ्रष्टाचार ही हो, बड़ी चालाकी से उन्होंने खुद को फंदे से निकाल लिया है। इससे भी बदतर यह कि केवल सरकार को राक्षस बताकर उन्होंने अपने लिए एक सिंहासन का निर्माण कर लिया है, जिस पर बैठकर वे सार्वजनिक क्षेत्र से राज्य के और पीछे हटने और दूसरे दौर के सुधारों को लागू करने की मांग कर सकते हैं -- और अधिक निजीकरण, आधारभूत संरचना और भारत के प्राकृतिक संसाधनों तक और अधिक पहुँच। ज्यादा समय नहीं लगेगा जब कॉरपोरेट भ्रष्टाचार को कानूनी दर्जा देकर उसका नाम लॉबिंग शुल्क कर दिया जाएगा।

क्या ऐसी नीतियों को मजबूत करने से जो उन्हें गरीब बनाती जा रही है और इस देश को गृह युद्ध की तरफ धकेल रही है, 20 रुपए प्रतिदिन पर गुजर कर रहे तिरासी करोड़ लोगों का वाकई कोई भला होगा? यह डरावना संकट भारत के प्रतिनिधिक लोकतंत्र के पूरी तरह से असफल होने की वजह से पैदा हुआ है। इसमें विधायिका का गठन अपराधियों और धनाढ्य राजनीतिकों से हो रहा है जो जनता की नुमाइन्दगी करना बंद कर चुके हैं। इसमें एक भी ऐसा लोकतांत्रिक संस्थान नहीं है जो आम जनता के लिए सुगम हो। झंडे लहराए जाने से बेवकूफ मत बनिए। हम भारत को आधिपत्य के लिए एक ऐसे युद्ध में बंटते देख रहे हैं जो उतना ही घातक है जितना अफगानिस्तान के युद्ध नेताओं में छिड़ने वाली कोई जंग। बस यहाँ दांव पर बहुत कुछ है, बहुत कुछ।

साभार : 'द हिंदू' में छपे इस लेख का अनुवाद मनोज पटेल द्वारा अपने ब्लॉग 'पढ़ते-पढ़ते' के लिए किया गया।

पूरबी के बेताज बादशाह महेन्दर मिसिर

■ कुमार नरेंद्र सिंह

उस दिन महेन्दर मिसिर अपने एक दोस्त के साथ कलकत्ता (कोलकाता) की मशहूर तवायफ सोना बाई के कोठे पर पहुंचे थे मुजरा सुनने। दोस्त ने बताया था कि एक बार जो सोनाबाई का गाना सुन लेगा उसे जीवन भर किसी दूसरे का गाना अच्छा नहीं लगेगा। दोस्त के मुंह से सोनाबाई के गायन की शोहरत सुनने के बाद महेन्दर मिसिर के लिए रुक पाना कहां संभव था। लड़कपन में लगा संगीत का चस्का अब कलावंत बनकर जवान हो चुका था। महेन्दर मिसिर का दोस्त सोनाबाई से परिचित था। जब सोनाबाई ने पूछा कि साथ में यह व्यक्ति कौन है तो उसने बताया कि वह मेरे दोस्त हैं और आपकी शोहरत सुनकर आपकी महफिल में आए हैं। बातों-बातों में दोस्त ने यह भी बताया कि महेन्दर मिसिर स्वयं भी सुर के रसिया हैं और गाते-बजाते भी हैं। फिर क्या था साजिंदे आ गए और लग गई गीतों की महफिल। सोनाबाई ने अपने साजिंदों को संकेत दिया....वे हरकत में आ गए और सोनाबाई के कंठ से स्वर लहरी फूट उठी। गाने के बोल थे--माया के नगरिया में लागल बा बजरिया

ए सुहागिन सुन हो।
चीजवा बिकेला अनमोल
ए सुहागिन सुन हो।

महेन्दर मिसिर भाव-विभोर होकर सुनते रहे। गाना समाप्त होने के बाद जब सोनाबाई ने उनसे पूछा कि गाना कैसा लगा तो महेन्दर मिसिर ने कहा आपका आलाप लाजवाब है और आवाज़ जादुई... आवाज़ में ऐसी कशिश मैंने कहीं और नहीं देखी है लेकिन स्वर के उतार-चढ़ाव और भावों की अदायगी में वह रवानगी नहीं थी, जो इस गाने में होनी चाहिए थी। महेन्दर मिसिर की यह बात सुनते ही जैसे सोनाबाई के तन-बदन में आग लग गई। उसने हिकारत की नज़र से महेन्दर मिसिर को देखा और व्यंग्य वाण छोड़ते हुए कहा मिसिर जी, गलती निकालना तो आसान होता है... ज़रा आप ही गा कर बताइए न कि गाने में चूक कहां हुई। पहले तो मेहन्दर मिसिर ने ना-नुकुर की लेकिन जब सोनाबाई ने यह कह दिया कि अपने तो गाने आता नहीं और चले हैं सोनाबाई के सुर में दाग दिखाने, तो महेन्दर मिसिर ने सोनाबाई के साजिंदों को बजाने का इशारा किया और स्वयं तानपुरा लेकर बैठ गए। सुर संधान कर जब उन्होंने गाना शुरू किया तो सोनाबाई को ऐसा लगा जैसे महेन्दर मिसिर नहीं बल्कि स्वयं गंधर्वराज चित्ररथ गा रहे हों। वह सुध-बुध बिसरा कर गीत सुनने लगी... ऐसे जैसे किसी ने उस पर सम्मोहन मंत्र डाल दिया हो। उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि कोई इतना अच्छा गा सकता है। जब गाना खत्म हुआ तो सोनाबाई ने महेन्दर मिसिर के पांव पकड़ लिए और अपनी गलती के लिए बार-बार माफी मांगने लगी। मिसिर जी ने उसे माफ कर दिया और बातों-बातों में यह भी बता दिया कि जो गीत वह गा रही थी, वह उन्हीं का लिखा हुआ है। सोनाबाई ने कहा कि वह उनको शिष्या बना लें तो उसका जीवन सार्थक हो जाएगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि महेन्दर मिसिर ने उसकी यह इच्छा पूरी की। वह महीनों सोनाबाई के साथ रहे और अपनी रागिनी से उसके अंतर का क्लेश दूर करते रहे।

महेन्दर मिसिर अद्‌भुत प्रतिभा के धनी तो थे ही, उनका व्यक्तित्व भी बहुआयामी था। पहलवानी की बदौलत गठा हुआ कसरती बदन, सिल्क का कुर्ता, परमसुख धोती, गले में सोने का चमचमाता हार और मुंह में पान की गिलौरी-जो देखता, देखता ही रह जाता। कद-काठी और सुदर्शन रूप ऐसा कि हज़ारों की भीड़ में दूर से ही नज़र आ जाते थे। जैसी सुंदर काया, उतनी ही सुरीली आवाज़ और ऊपर से मर्दानी ठसक गजब की। गीत-संगीत के रसिया और मर्मज्ञ महेन्दर मिसिर आशु कवि थे। सरस्वती के वरद पुत्र महेन्दर मिसिर के कंठ से जब गीत के बोल फूटते थे तो कहते हैं कि सड़क जाम हो जाती थी।

महेन्दर मिसिर अद्‌भुत प्रतिभा के धनी तो थे ही, उनका व्यक्तित्व भी बहुआयामी था। पहलवानी की बदौलत गठा हुआ कसरती बदन, सिल्क का कुर्ता, परमसुख धोती, गले में सोने का चमचमाता हार और मुंह में पान की गिलौरी जो देखता, देखता ही रह जाता। कद-काठी और सुदर्शन रूप ऐसा कि हज़ारों की भीड़ में दूर से ही नज़र

आ जाते थे। जैसी सुंदर काया, उतनी ही सुरीली आवाज़ और ऊपर से मर्दानी ठसक गजब की। गीत-संगीत के रसिया और मर्मज्ञ महेन्दर मिसिर आशु कवि थे। सरस्वती के वरद पुत्र महेन्दर मिसिर के कंठ से जब गीत के बोल फूटते थे तो कहते हैं कि सड़क जाम हो जाती थी। उनकी खास विशेषता यह थी कि वह सिर्फ अपने लिखे गीत ही गाते थे। उनके गीतों की मिठास आज भी ज्यों की त्यों है। उनके गीत सुनकर कौन न भाव-विभोर हो जाए। स्वर के उस्ताद तो वह थे ही, वादन कला में भी वह उतने ही प्रवीण थे। कहते हैं कि शायद ही कोई ऐसा वाद्य हो, जिसमें वह सिद्धहस्त नहीं थे। हारमोनियम हो या तबला, सितार हो या सारंगी, उनकी उंगलियों के करतब देखकर लोग दंग रह जाते थे। ढोलक, झाल, मजीरा के तो वह बेमिसाल फनकार थे ही, कभी-कभी बांसुरी की मधुर तान के साथ गोपी प्रसंग के गीतों पर जब आलाप लेते थे तो लगता था जैसे फिजां में विरह रस घुल रहा हो।

छपरा से 12 किलोमीटर दूर कहीं मिश्रवलिया गांव में 16 मार्च, 1886 को पैदा हुए महेन्दर मिसिर मां-बाप के अतिशय दुलार में पले। काफी मन्नतों के बाद शिवशंकर मिसिर को यह बेटा नसीब हुआ था। इसके लिए उन्होंने अपनी धर्मपत्नी गायत्री देवी के साथ मेहंदार की यात्रा भी की थी। भगवान महेन्द्रनाथ ने उनकी सुन ली और गायत्री देवी की गोद भर गई। पुत्र जन्म की खुशी में शिवशंकर मिसिर तो इतने खो गए कि महीने भर अपने घर पर लोगों को भोज-भात कराते रहे और दरवाजे पर भजन-कीर्तन, गीत-गवनई और रंग-रास चलता रहा। चूंकि भगवान महेन्द्रनाथ के आशीर्वाद से उन्हें बेटा मिला था, इसलिए स्वाभाविक रूप से उन्होंने अपने बेटे का नाम महेन्दर मिसिर रखा। महेन्दर मिसिर बचपन से ही अपने अन्य सहपाठियों की तुलना में ज्यादा हट्ठे-कट्ठे और मजबूत थे। उस काल में भोजपुरी प्रदेशों में पहलवानी का बड़ा जोर था, इतना कि हर कोई अखाड़े 'जोड़' करता था। शायद ही ऐसा कोई गांव रहा हो, जहां अखाड़ा और महावीरजी का मंदिर न हो। मालूम हो कि आपस में जब कुश्ती होती है तो उसे भोजपुरी प्रदेशों में जोड़ करना कहा जाता है। शरीर स्वस्थ्य होने के कारण महेन्दर मिसिर को अखाड़ा आकर्षित करने लगा और बस, क्या था, उनका समय अखाड़े में कुश्ती के दांव-पेंच, कलाबाजी, बाना-बनैठी, गदका सीखने में बीतने लगा। इसी क्रम में उन्हें वह चस्का लगा, जिसके लिए आज भी वह जाने जाते हैं। यह चस्का था गीत-गवनई का। मंदिरों में होने वाली आरती में भजन गाना तो जैसे उनका मुख्य शगल ही बन गया था। लेकिन उनका यह रवैया शिवशंकर मिसिर को पसंद नहीं आया और उन्होंने महेन्दर मिसिर को गांव के ही पंडित नायडू मिश्र की पाठशाला में दाखिला दिला दिया। अपनी ही धुन में रहने वाले बालक महेन्दर मिसिर को पढ़ाई में तनिक भी जी नहीं लगता था। पर हां, वह पंडित जी के मुंह से जो संस्कृत के श्लोक सुनते थे, उसका मर्म अपनी भाषा भोजपुरी में गीत बनाकर गाते थे। यह एक तरह से पढ़ाई में रुचि नहीं रहने के बावजूद सबसे अच्छी पढ़ाई करने का उदाहरण था। संस्कृत परंपरा से सीख लेकर महेन्दर मिसिर भोजपुरी का श्रृंगार करने लगे।

धीरे-धीरे महेन्दर मिसिर के गाने की शोहरत गांव-जेवार में गूंजने लगी थी। उनके पिता वहां के एक बड़े जमींदार हलवंत सहाय की जमींदारी की देखभाल करते थे। एक तरह से वह एक छोटे जागीरदार थे। हलवंत सहाय विधुर थे और संतान विहीन भी। उनकी पत्नी असमय ही उन्हें छोड़कर स्वर्ग सिधार गई थीं। एकाकी जीवन जी रहे सहाय जी का अधिकांश समय नृत्य-गीत की महफिल सजाने में ही कटता था। रईसी ठाठ-बाट के साथ नाच-गान का आयोजन उनके दरबार की खासियत थी। महेन्दर मिसिर के पिता हलवंत सहाय की जमींदारी की देखभाल तो करते ही थे, साथ-साथ उनकी कोठी पर जो छपरा कोठी के नाम से मशहूर थी, पूजा-पाठ कराने भी जाया करते थे। एक बार शिवरात्रि के अवसर पर शिवशंकर मिसिर की तबीयत बिगड़ गई, लेकिन कोठी पर पूजा कराना जो अत्यावश्यक था, इसलिए उन्होंने अपने पुत्र महेन्दर मिसिर को वहां पूजा कराने के लिए भेज दिया। महेन्दर मिसिर ने विधिवत पूजा-पाठ कराया और जब दान-दक्षिणा लेकर चलने को हुए तब तक शाम हो चुकी थी। उस दिन हलवंत सहाय ने अपनी कोठी पर महफिल बुलाई थी, जिसमें छपरा के सभी बड़े लोगों को आमंत्रित किया गया था। हलवंत सहाय ने महेन्दर मिसिर को जब उस रात कोठी पर ही रुक जाने के लिए कहा तो महेन्दर मिसिर इनकार न कर सके। जब महफिल सज उठी और साजिंदों ने सुर मिलाया लेकिन तबलची न जाने कहां चला गया था। महेन्दर मिसिर ने हलवंत सहाय की तरफ कुछ इस निगाह से देखा जैसे वह तबला बजाने की इजाजत चाहते हों। हलवंत सहाय ने भी इशारे-इशारे में ही बजाने की हामी भर दी। तबले पर थाप पड़ी और घुंघरू बोल उठे। वह नर्तकी क्या गजब का नृत्य कर रही थी, लगता था मानो बिजली चमक रही हो। पैरों की गति कभी

थिर तो कभी तीव्र होकर एक रोमांचक लास्य पैदा कर रही थी। सभी मेहमान मंत्रमुग्ध इस दृश्य को देख रहे थे। लेकिन तबले की थिरकन नर्तकी के नर्तन पर भारी पड़ने लगी। अंत में थक कर वह हताश भाव से खड़ी हो गई। इधर महेन्दर मिसिर के हाथ भी लहूलुहान थे और वह प्रशंसा भरी निगाहों से नर्तकी को देख रहे थे। तालियों की गड़गड़ाहट से आसमान भर गया, लोग महेन्दर मिसिर के मुरीद हो उठे। इसके बाद तो हलवंत सहाय और महेन्दर मिसिर का चौबीसों घंटे का साथ हो गया।

दरबार का आश्रय पाकर महेन्दर मिसिर की गायकी फूलने-फलने लगी और उसकी सुगंध चहुंदिशी पसरने लगी। कलाकार और कला मर्मज्ञ साथ हों दोस्ती क्योंकर न होती। अब सहाय जी का घर ही मिसिर जी का घर था और सहाय जी थे उनके परम सखा। सहाय जी उस समय की सबसे मशहूर तवायफ मुजफ्फरपुर की ढेलाबाई के प्रेम में गिरफ्तार थे। वह किसी भी कीमत पर ढेलाबाई को पाना चाहते थे। उन्होंने यह बात अपने परम सखा महेन्दर मिसिर को बताई। महेन्दर मिसिर ने कहा कि अगर आप उन्हें दूसरी पत्नी का दर्जा देंगे तो वह कुछ कर सकते हैं। हलवंत सहाय ने हामी भर दी। थोड़े दिन के बाद जब सोनपुर का प्रसिद्ध हरिहर क्षेत्र का विश्व प्रसिद्ध मेला लगा तो वहां महफिल सजाने के लिए मुजफ्फरपुर की मशहूर और बला की खूबसूरत तवायफ ढेला बाई भी पहुंची। अपने दोस्त का मान रखने के लिए मिसिर जी सोनपुर के मेले से ही ढेलाबाई को अगवा कर हलवंत सहाय के यहां ले आए। यह अलग बात है कि ढेलाबाई स्वयं महेन्दर मिसिर पर मरती थी। ढेलाबाई को पाकर हलवंत सहाय ने सब कुछ पा लिया। उन्होंने ढेलाबाई को अपने दिल के साथ-साथ अपनी जायदाद की मालकिन भी बना डाला। सहाय जी ने अपनी सारी जायदाद ढेलाबाई के नाम कर दी। ढेलाबाई ने भी धीरे-धीरे नाचना, गाना छोड़ दिया क्योंकि यह हलवंत सहाय की प्रतिष्ठा के खिलाफ था।

समय ने एक बार फिर करवट ली। हलवंत सहाय अचानक गायब हो गए। कोई नहीं जान सका कि वह कहीं चले गए या उनकी मृत्यु हो गई। बहरहाल, सहाय जी के नहीं रहने पर अब ढेलाबाई की देखभाल की जिम्मेदारी महेन्दर मिसिर के सिर पर आ गई। सहाय जी के गायब होने के बाद उनके पट्टीदारों ने ढेलाबाई की कोठी पर धावा बोल दिया। इसी अवसर पर महेन्दर मिसिर का रौद्र रूप सामने आया। वह अपनी टोली के सदस्यों के साथ स्वयं लाठी लेकर ढेलाबाई के विरोधियों पर पिल पड़े और उन्हें मार भगाया। अब महेन्दर मिसिर ढेलाबाई के रक्षक बन चुके थे। इन सब कारणों से ढेलाबाई के मन में भी महेन्दर मिसिर के लिए प्रीत फूटने लगी। हलवंत सहाय के सानिध्य में ढेलाबाई ने नाचना-गाना बिसार दिया था...पैरों के घुंघरू खोलकर रख दिए थे। लेकिन एक दिन ढेलाबाई ने फिर से घुंघरू बांध लिए। हुआ यह कि एक रात महेन्दर मिसिर ढेलाबाई की कोठी में बने शिव मंदिर में स्वर साधना कर रहे थे। उनके गीत के बोल चांदनी रात में मोती की तरह बिखर रहे थे। उन्हीं मोतियों को अपने आंचल में बटोरकर ढेलाबाई ने अपने पांवों में फिर से घुंघरू बांध लिए और नाचने लगी। संगीत और नृत्य का यह सहगमन काफी देर तक चलता रहा और तब तक चलता रहा, जब तक ढेलाबाई थककर चूर नहीं हो गई। परंतु यह तो बाद की बात है। इससे पहले और कुछ भी हुआ था।

कलकत्ता में रहते हुए महेन्दर मिसिर का संपर्क वहां के कतिपय क्रांतिकारियों से हुआ और उनके मन में स्वतंत्रता की आग जलने लगी। छपरा में ही रहते हुए एक दिन उनकी मुलाकात मुक्तानंद जी से हुई जो एक क्रांतिकारी संगठन के सदस्य थे। वह कलकत्ता से महेन्दर मिसिर के लिए एक संदेश लेकर आए थे जिसमें कहा गया था कि वह बनारस जाकर अभयानंद जी से मुलाकात करें। महेन्दर मिसिर बनारस पहुंच गए। वह गए तो थे सिर्फ अभयानंद जी से भेंट करने लेकिन एक बार वहां पहुंचे तो तीन महीने वहीं रह गए। वहां रहते हुए उनके गीतों की जबर्दस्त धूम मची, कचौड़ी गली के कोठे गुलजार हो उठे। रसिक जन महेन्दर मिसिर के गीतों के दीवाने हो उठे। इसी सिलसिले में उनकी मुलाकात केसरबाई और विद्याधरीबाई जैसी मशहूर नर्तकियों से हुई। केसरबाई ने तो मिसिर जी से बाकायदा पूर्वी ठाठ का संगीत सीखा। मिसिर जी का साथ पाकर केसरबाई शोहरत की बुलंदी पर पहुंच गईं और वनजूही की खुशबू की तरह उनकी मदमाती आवाज फिजां में घुलने लगी। महेन्दर मिसिर के जीवन में यहां एक और मोड़ भी आया... अब वह कबीरदास और रैदास से प्रभावित होकर निर्गुण के भाव में गोते लगाने लगे। उस समय के उनके रचे गीत रहस्य और अध्यात्म के भाव से भरे हैं। उपरोक्त गीत ...माया के नगरिया में... उसी निर्गुण की उपासना करता प्रतीत होता है।

यूं तो महेन्दर मिसिर के जीवन में कई मोड़ आए लेकिन बनारस में रहते हुए उनके जीवन में अब एक ऐसा मोड़ आया

जिसने उनकी जिंदगी की दिशा और दशा दोनों को बदल दिया। यहीं पर उनका अंग्रेज विरोध परवान चढ़ता है और वह देश में अंग्रेजी हुकूमत खासकर उसकी अर्थव्यवस्था को बर्बाद कर देने के लिए उद्यत हो उठे। अभयानंद के सहयोग से उन्हें नोट (रुपया) छापने की एक मशीन मिल गई। मशीन लेकर मिसिर जी छपरा आ गए और योजनाबद्ध तरीके से नोट छापने और उसे बाजार में चलाने का काम करने लगे। इसमें कोई शक नहीं कि महेन्दर मिसिर ने जाली नोटों से अपने लिए सुख-सुविधा जुटाए और तवायफों पर भी खूब पैसे लुटाए नोट छापने के धंधे के पीछे वास्तविक उद्देश्य था आजादी की लड़ाई लड़ने वालों तथा उनके परिजनों को आर्थिक सहायता पहुंचाना और मिसिर जी ने इस उद्देश्य से कभी समझौता नहीं किया। बंगाल समेत देश के अन्य हिस्सों में काम करने वाले क्रांतिकारियों की खूब मदद की। कोई भी दीन-दुखी उनके दरवाजे से खाली हाथ वापस नहीं लौटता था। परेशानहाल लोगों की मदद के लिए उनकी झोली हमेशा खुली रहती थी।

महेन्दर मिसिर की शाहखर्ची के किस्से अब मशहूर होने लगे थे। हुक्मरानों को पहली बार संदेह तब हुआ, जब 1905 में सोनपुर के मेले में ज्यादा तवायफों के तंबू मिसिर जी की तरफ से लगवाए गए थे। इस मामले में मिसिर जी ने देश के बड़े-बड़े जमींदारों को भी पीछे छोड़ दिया था। बस क्या था... पुलिस उनके पीछे लग गई। जांच करने और सबूत इकट्ठा करने की जिम्मेदारी सीआईडी इंस्पेक्टर सुरेंद्रनाथ घोष और जटाधारी प्रसाद को मिली। सुरेंद्रनाथ घोष किसी तरह मिसिर जी का नौकर बनने में कामयाब हो गया और गोपीचंद के रूप में साईस बनकर उनके घोड़े की देखभाल करने लगा। मालूम हो कि मिसिर जी अपने जमाने के माने हुए घुड़सवार थे। कहते हैं, उस समय पूरे छपरा जिले में उनके जैसा दूसरा घुड़सवार नहीं था। जब वह घुड़सवारी पर निकलते थे तो उन्हें देखने के लिए राहों में लोगों की भीड़ लग जाती थी।

बहरहाल, धीरे-धीरे गोपीचंद उनके नोट छापने का राज जान गया। उसी के इशारे पर उनके यहां पुलिस का छापा पड़ा। 16 अप्रैल, 1924 को उनके चारों भाइयों समेत महेन्दर मिसिर को गिरफ्तार कर लिया गया। जब ढेलाबाई को महेन्दर मिसिर की गिरफ्तारी की खबर मिली तो वह अत्यंत दुखी हुई। अब महेन्दर मिसिर को जेल से छुड़ाना ही उसका मकसद बन गया। हालांकि उस समय तक ढेलाबाई विधवा हो चुकी थी लेकिन हलवंत सहाय ने वादे के मुताबिक अपनी सारी संपत्ति ढेलाबाई के नाम कर दी थी, इसलिए मिसिर जी को छुड़ाने के लिए शहर के सबसे बड़े वकील हेमचंद्र बनर्जी को अपना वकील नियुक्त किया। बनर्जी साहेब ने ढेलाबाई को सलाह दी कि यदि महेन्दर मिसिर अपने अपराध से मुकर जाएं और दोष किसी दूसरे पर मढ़ दें तो उन्हें बचाया जा सकता है। दूसरे दिन ढेलाबाई महेन्दर मिसिर से मिलने गई और उन्हें अपराध से मुकर जाने के लिए कहा लेकिन महेन्दर मिसिर को झूठ बोलना गवारा नहीं हुआ। परिणामस्वरूप देशद्रोह और अन्य आपराधिक धाराओं के तहत उन्हें चालीस वर्ष सश्रम कारावास की सजा मिली और उन्हें बक्सर केंद्रीय जेल में डाल दिया गया। लेकिन ढेलाबाई की हिम्मत को महेन्दर मिसिर को मिली यह सजा भी हिला नहीं पाई और वह पटना हाईकोर्ट पहुंची। पटना उच्च न्यायालय में लगातार तीन महीने तक मामले की सुनवाई चलती रही। मिसिर जी के वकील थे क्रांतिकारी हेमचंद्र मिश्र और प्रख्यात स्वतंत्रता सेनानी चितरंजन दास लेकिन कुछ काम न आया और मिसिर जी मुकदमा हार गए और उन्हें 10 साल की सजा मुकर्रर की गई। लेकिन अच्छे व्यवहार और लोकप्रियता के चलते तीन साल में ही उनकी रिहाई हो गई। कहते हैं, जब वे जेल में बंद थे तो देश भर की सैकड़ों तवायफों ने वायसराय को ब्लैंक चेक के साथ एक पत्र भेजा था जिसमें गुजारिश की गई थी कि सरकार उस पर कोई भी रकम लिख सकती है, हम तवायफें अदा करेंगी, लेकिन महेन्दर मिसिर को आजाद कर दिया जाए। यह घटना इस बात का सबूत है कि तवायफों के मन में उनके लिए कितनी इज्जत थी। बक्सर जेल में रहते हुए ही उन्होंने सात खंडों में अपूर्व रामायण की रचना कर डाली थी। जेल प्रवास के दौरान हुई इस घटना की अनुगूंज आज भी जनश्रुतियों में सुनी जा सकती है। एक जनश्रुति के अनुसार बक्सर जेल की निशब्द रातों में जब वह अपना यह विरह गीत की तान लेते थे तो जेलर की पत्नी उसे सुनकर भाव-विह्वल होकर उनके गीत का रसस्वादन करने जेल में पहुंच जाती थी... आखिर गीत भी तो ऐसा ही है...

आधी-आधी रतिया के कुहुके कोइलिया
राम बैरनिया भइले ना।
मोरा अंखिया के निंदिया....
राम बैरनियां भइले ना।
कुहुकि-कुहुकि के कुहके कोइलिया
राम अगिनिया धधके ना।
मोरा छतिया के बीचवा
राम अगिनिया धधके ना।

जेल से छूटने के बाद महेन्दर मिसिर के परिजन उन्हें गांव लेकर

चले गए, क्योंकि उनकी तबीयत खराब रहने लगी थी। जेल से छूटने के बाद महेन्दर मिसिर की जिंदगी पूरी तरह बदल गई थी। अब उनका अधिकांश समय पूजा-पाठ में बीतने लगा। एक दिन महेन्दर मिसिर पूजा-पाठ करके उठे और अपना आखिरी गीत लिखा। यह गीत भगवान शंकर के हुजूर में लिखा गया था। उस गीत को लेकर वह बरसों बाद एक बार फिर लौटकर उसी शिवमंदिर में आए जो ढेलाबाई ने उनके लिए बनवाया था। जब पास-पड़ोस के लोगों को पता चला कि महेन्दर मिसिर शिवमंदिर में आए हैं तो सैकड़ों की संख्या में भक्त लोग वहां जुटने लगे। महेन्दर मिसिर ने सबको यथा प्रणामाशीश किया और कहा कि आज ऐसी महफिल जमेगी जैसी पहले कभी नहीं जमी थी। अपने भक्तों, चेलों के जरिए उन्होंने शहर के सभी संगीत प्रेमियों और अफसरों को न्योता भेजा। शाम होते-होते शिवमंदिर पर लोगों की एक बड़ी भीड़ उनका गायन सुनने के लिए आ खड़ी हुई। महेन्दर मिसिर हारमोनियम लेकर आए और शिवलिंग के सामने बैठ गए। यह वही शिवलिंग था जिसकी उन्होंने स्वयं प्राण-प्रतिष्ठा की थी। महेन्दर मिसिर ने जैसे ही हारमोनियम की रीड पर अपनी उंगलियां फेरी कि लोगों का कोलाहल अनायास थम गया। जब करुण स्वर में उन्होंने अपना सद्यरचित गीत गाना शुरू किया तो सभी अपनी सुध-बुध खोकर गीत सुनने लगे। जैसे ही भजन समाप्त हुआ कि महेन्दर मिसिर हारमोनियम पर लुढ़क गए और उनका माथा सीधे शिवलिंग पर जाकर टिक गया। महफिल में कोहराम मच गया, लोग विलाप करने लगे लेकिन महेन्दर मिसिर तो इहलोक से विदा लेकर गोलोक पहुंच चुके थे। उस समय उनकी उम्र 62 साल की थी और वह मनहूस दिन था 25 अक्टूबर, 1946।

आजादी की लड़ाई के इतिहास में महेन्दर मिसिर को भले ही वह जगह न मिली हो, जिसके वह हकदार हैं लेकिन उनके गीतों ने उनकी शख्सियत को हमेशा ऊंचा उठाए रखा। अंग्रेजों के प्रति अपने विद्वेष को व्यक्त करते हुए वह गीत रचते हैं...

हमरा निको ना लागे गोरन के करनी
रुपया ले गइले, पइसा ले गइले
अउरी ले गइले सब गिन्नी।
बदला में देके गइले ढल्ली के दुअन्नी
हमरा नीको ना लागे गोरन के करनी।

राग-रागिनी उनकी जिंदगी थी...वह उसे जीते थे...और आज वही उनकी थाती है, जो जन-जन के मन कंठ में सुरक्षित है। पुरुबी राग उनकी स्वर लहरी में हिलोरें लेता है। उनके गीतों में जहां पहाड़ी नदी के वेग की तरल तीव्रता है, वहीं झिर..झिर बहती शीतल मंद बयार का सुखद स्पर्श भी है। भाषा की सहजता और भाव की गहराई उनके गीतों की असली पहचान हैं। बोल और भाव की मिश्री में पगे उनके गीत किसी के भी अंतर्मन को छूने, सहलाने की स्वाभाविक काबिलियत रखते हैं। विरही नायिका की विकलता और उसकी सास की निष्ठुरता का क्या ही मर्मस्पर्शी बयान इन पंक्तियों में मिलता है...

सासु मोरा मारे रामा बांस के छिउकिया,
ए ननदिया मोरी है सुसुकत पनिया के जाए।
गंगा रे जमुनवां के चिकनी डगरिया
ए ननदिया मोरी हे पउंवां धरत बिछलाय।
गावत महेन्दर मिसिर इहो रे पुरुबिया
ए ननदिया मोरी हे पिया बिना रहलो ना जाए।

लोक कंठ के गवैया महेन्दर मिसिर के गीतों में श्रृंगार और अध्यात्म दोनों ही प्रधानता से मिलते हैं और कमाल की बात यह है कि वह दोनों में ही पारंगत हैं। इतना ज़रूर है कि उनके गीतों में श्रृंगार और विरह की अभिव्यक्ति ज्यादा मुखर है। विरह विदग्ध नायिका के चित्रण में उनका यह गीत कितना भावमय हो उठता है, एक बानगी देखिए...

अंगुरी में डंसले बिया नगिनियां हे
ननदी दियरा जरा द।
दियरा जरा द अपना भइया के जगा द
पोरे-पोरे उठेला दरदिया हे
ननदी दियरा जरा द।

लोक धुन में पगे उनके गीत जब अपनी अर्थ छटा बिखेरते हैं तो सुनने वाला सुनते ही रह जाता है। गोपी विरह के प्रसंग में मिसिर जी के शब्द विन्यास से गीत के बोल कितने भावप्रवण हो उठे हैं, इसका एक उदाहरण देखिए...

सुतल सेजरिया सखी देखली सपनवां
निर्मोही कान्हा बंसिया बजावेला हो लाल।
कहत महेन्दर श्याम भइले निरमोहिया से
नेहिया लगा के दागा कइले हो लाल।

विरह की आंच में तपे महेन्दर मिसिर के गीत श्रोता के हृदय को ऐसे बेधते हैं कि मन बेकल हो उठता है।

संगीत साधक और पूरबी के पुरोधा महेन्दर मिसिर का रचना संसार व्यापक है, जिसमें भाषा की लचक और रवानी तथा राग-रंजित रागिनी का अपूर्व संगम देखने को मिलता है। उन्होंने सैकड़ों गीत और दर्जन भर से ज्यादा पुस्तकें लिखीं, जिनमें उनके तीन नाटक भी शामिल हैं। अन्य पुस्तकों में महेन्दर मंजरी, महेन्दर विनोद, महेन्दर मयंक, भीष्म प्रतिज्ञा, कृष्ण गीतावली, महेन्दर प्रभाकर, महेन्दर रत्नावली, महेन्दर चंद्रिका

और महेन्दर कवितावली प्रसिद्ध है। इसके अलावा उनकी अद्‌भुत पुस्तक अपूर्व रामायण है। कहा जा सकता है कि अन्य भाषाओं की रामयण की तरह भोजपुरी भाषा-भाषियों के लिए उन्होंने एक अलग रामायण की रचना की। इस रामायण में समानता का भाव मुखर है। यहां राम कोई अजनबी देवता नहीं, उनके अपने हैं और वहां के लोग उनसे उसी तरह बात करते हैं, जैसे वे आपस में करते हैं। लीजिए, कुछ बानगी देखिए। रामजी बाजार में खरीदारी करने पहुंचे हैं। परिधान बेचने वाला एक भोगल उनसे कहता है

'शाला है दोशाला चित्रशाला बहुभांतिन के
शाल ओ रुमाल ऊनेदार बने काम है।
घूसा अलेबान कोट कुर्ता गंजी फराश
कंबल पछाहीं जाके सस्ते सब दाम है।
उम्दे जामेवार सुर्ख धानी ओ सुफेद स्याह
चोंगा कामदार जाके सांचे सम काम है।
द्विज महेन्दर रामचंदर सउदा कुछ लिजे आज
देता हूं उधार आप देना न छदाम है।'

भोगल की बात सुनकर बजाज कहां चुप रहने वाला था। उसने भी रामजी से कुछ खरीदने की गुजारिश करता है...

'सलमा सितारे के किनारे हैं हमारे प्यारे
चादर रुमाल देखि मोहित होई जाओगे।
सासन लेट मखमल ओ डिरिया देखाऊं तोहे
धोती कोरदार देख मुदित होई जाओगे।
शांतिपुर ढाका तानजेब है हमारे पास
जड़ियन के काम देख अन्त नहीं जाओगे।
द्विज महेन्दर रामचंदर सउदा कुछ लिजे आज
जनकजी की सभा में मान खूब पाओगे।

उनके बीच हो रही यह बातचीत एक दलाल भी सुन रहा होता है। उसे महसूस होता है कि कोई मोटा आसामी है, इसलिए वह रामचंद्र को किसी अन्य जगह से सामान दिलाने की बात कहता है...

चलिए महाराज राज राज के कुमार जहां
उम्दे दूकान मारवारिन के ठट्ट हैं।
ई तो टुटपुंजिया बेईमान हैं जहान बीच
नीचन में नीच ई तो सबहीं के छट्ट हैं।
बात के बनावे बेईमान भी कहावे ई त
सबके लोभावे पइसा लेत खटखटात हैं।
द्विज महेन्दर रामचंदर छोड़ो जी दूकान याके
कहां ले सुनाऊं ई तो भारी गलाकट्ट हैं।'

दलाल की बात सुनकर बजाज को ताव आ जाता है और उसके मुंह से बरबस निकल पड़ता है....

ई त बेईमान याके बापो बेईमान रहे
दादा बेईमान याके सकल जहान में।
मार के देवाला ई तो केतने घर घाला
देता है ठाला मस्त बइठा है दूकान में।
भारी बतबनवा याके बात के ठेकाना नहीं
खाली लामकाफ एको पइसा ना मकान में।
द्विज महेन्दर रामचंदर सउदा कुथ लिजे नाथ
कीजो ना लेहाज मेरे बैठिए दूकान में। '

इसी बीच वहां एक ठठेरा आ पहुंचता है और रामजी से बर्तन खरीदने की गुजारिश करता है...

'लीजिए कटोरा अमकोरा ओ गिलास खूब
उगलदान पानदान छीपी भी हजारी है।
गगरा परात लोटा थारी के ठेकाना नहीं
तावा भी धरे है ओ कराही लोहे वारी है।
कठरा अउर हथरा है हंडा सुराही लाख
पावा झंझार पुरी पलंग की तैयारी है।
द्विज महेन्दर रामचंदर सउदा कुछ लिजे आज
कवन ऐसी वस्तु ना दोकान में हमारी है।'

अपूर्व रामायण का केवट-राम प्रसंग भी बड़ा निराला है। भक्तिभाव से परिपूर्ण होने के बावजूद यहां केवट से केवट वाली गरिमा भी दिखाई देती है...

धोबी से धोबी नहीं लेत है धुलाई नाथ
नाई से नाई ना मजूरी के लिवैया है।
केवट से केवट नाहीं लेत उतराई नाथ
हम तो नदी के खेवइया आप भव के खेवैया हैं।
दुख के हरैया त्रयताप के मिटैया प्रभु
आरत हरैया आप धरनी धरैया हैं।
द्विज महेन्दर लालसा है चरन पछारिबो को
तर गई अहल्या मेरो जीवन यही नैया है। '

उनके चुनिंदा गीतों का संग्रह कविवर महेन्दर मिसिर का गीत संसार शीर्षक से डॉ. सुरेश कुमार मिश्र के संपादन में अखिल भारतीय भोजपुरी परिषद, लखनऊ से सन् 2002 में प्रकाशित हुआ लेकिन वह पूर्ण नहीं है। उनके सैकड़ों गीत आज भी संग्रह की प्रतीक्षा में हैं। महेन्दर मिसिर को लेकर कई पुस्तकें भी लिखी गई हैं, जिनमें पांडे कपिल की फुलसूंघी, रामानाथ पांडे की महेन्दर मिसिर और रविन्द्र भारती की कंपनी उस्ताद उल्लेखनीय है। उनके गीत लोक जीवन के दस्तावेज हैं, लोक साहित्य की अनमोल धरोहर हैं।

जनलोकपाल बिल बहुत प्रतिगामी है

मुझे खुशी है कि जन लोकपाल बिल अपने मौजूदा स्वरुप में संसद में नहीं जा पाया। सिविल सोसायटी ने भ्रष्टाचार के विरुद्ध लोगों के गुस्से का इस्तेमाल अपने जन लोकपाल विधेयक को आगे बढ़ाने के लिए किया, जो कि बहुत प्रतिगामी बिल है।

अन्ना हजारे को भले ही जनसाधारण के संत के रूप में पेश किया गया हो किन्तु वे इस आन्दोलन को संचालित नहीं कर रहे थे। इस आन्दोलन के पीछे के दिमाग वे नहीं थे। दरअसल यह एन जी ओ द्वारा चलाया गया एक आन्दोलन था। किरण बेदी, अरविन्द केजरीवाल और मनीष सिसोदिया एन जी ओ चलाते हैं। तीन प्रमुख सदस्य मैग्सेसे पुरस्कार विजेता हैं जिन्हें फोर्ड फाउंडेशन और फेलर से आर्थिक सहायता मिलती है। मैं इस बिंदु पर ध्यान दिलाना चाहती थी कि विश्व बैंक और फोर्ड फाउंडेशन से सहायता पाने वाले ये एन जी ओ आखिर सार्वजनिक नीतियों को तय करने वाले मसले पर क्यों हिस्सेदारी कर रहे हैं। दरअसल हाल ही में मैं विश्व बैंक की साईट पर गई थी और मैंने पाया कि विश्व बैंक अफ्रीका जैसे देशों में 600 भ्रष्टाचार-विरोधी कार्यक्रम चलाता है। विश्व बैंक की भ्रष्टाचार निवारण में क्या रुचि है? उन्होंने पांच मुख्य बिंदु बताए हैं जिन्हें जानना ज़रूरी है :

1) राजनैतिक जवाबदेही को बढ़ाना, 2) सिविल सोसायटी की हिस्सेदारी को मजबूत करना, 3) प्रतियोगी निजी क्षेत्र का निर्माण करना, 4) सत्ता पर नियंत्रण लगाना, 5) सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबंधन को बेहतर करना।

इससे मुझे स्पष्ट हो गया कि विश्व बैंक, फोर्ड फाउंडेशन और ये लोग अंतर्राष्ट्रीय पूंजी की पैठ बढ़ाने में लगे हैं और यह 'कापी बुक विश्व बैंक एजेंडा' है। भ्रष्टाचार से हम भी पीड़ित हैं किन्तु जबकि सरकार के परम्परागत कार्य एन जी ओ और बड़े-बड़े निगम हथियाते जा रहे हैं तो इन सभी को क्यों छोड़ दिया जा रहा है।

यह सही है कि इस आन्दोलन में बहुत से लोगों ने हिस्सेदारी की और वे सभी भाजपा या मध्य-वर्ग ही नहीं थे। उनमें से बहुत से लोग दरअसल मीडिया द्वारा निर्देशित किए जा रहे एक तरह के रियल्टी शो में चले आए थे।

निचली नौकरशाही को लोकपाल के दायरे में लाने का मसला भी बहुत पेचीदा है। मुझे नहीं लगता कि हमारे देश की ऐसी समस्याएँ सिर्फ पुलिसिंग या शिकायती बूथों से हल होने वाली हैं। कोई ऐसी चीज़ लानी होगी जहां आप लोगों को यह भरोसा दिला सकें कि आप अफसरशाही का कोई ऐसा ताम-झाम नहीं खड़ा करने जा रहे जो कि उतना ही भ्रष्ट होगा। यदि आपका एक भाई भाजपा में हो, एक कांग्रेस में, एक पुलिस में और एक लोकपाल में तो ऐसी चीज़ों को कैसे संभाला जाएगा।

समस्या यह है कि ढांचागत असमानता पर सवाल नहीं खड़े किए जा रहे हैं बल्कि आप सिर्फ एक ऐसे कानून के लिए लड़ रहे हैं जो कि इस असमानता को आधिकारिक बना देगा। हाल ही में आंध्र प्रदेश और छत्तीसगढ़ की सीमा पर ऑपरेशन ग्रीन हंट के शरणार्थियों से मिली थी। उनके लिए मसला यह नहीं है कि टाटा ने इस खनन के लिए घूस दिया या वेदांता ने उस खनन के लिए घूस नहीं दिया। बड़ी समस्या यह है कि भारत की खनिज, जल एवं वन संपदा का निजीकरण किया जा रहा है, उन्हें लूटा जा रहा है। भले ही यह सब गैर-भ्रष्ट तरीके से किया जा रहा हो, यह समस्या है। कुछ बहुत महत्वपूर्ण एवं गंभीर चीज़ें घटित हो रही हैं जिन्हें नहीं उठाया जा रहा है।

मुझे याद नहीं पड़ता कि इसके पहले मीडिया ने ऐसा अभियान कब चलाया था जब कि दस दिनों तक बाकी हर तरह की खबरें किनारे कर दी गयी हों। एक अरब लोगों के इस देश में मीडिया के पास दिखाने के लिए और कुछ नहीं था और वह यह अभियान चला रहा था। कुछ बड़े टेलीविज़न चैनलों ने यह अभियान चलाया और कहा भी कि वे अभियान चला रहे थे। मेरे लिए यह प्रथमतया एक तरह का भ्रष्टाचार ही है। एक समाचार चैनल के रूप में आपको प्रसारण करने का लाइसेंस खबरें प्रसारित करने के लिए दिया जाता है न कि अभियान चलाने के लिए।

इस आन्दोलन के प्रतीकों पर बात करना मज़ेदार होगा। वन्दे मातरम का लंबा साम्प्रदायिक इतिहास रहा है। आपने पहले भारत माता की तस्वीर लगाई और फिर गांधी की। वहां मनुवादी क्रांतिकारी आन्दोलन के लोग थे। ज़रा अनशन के बाद गांधी जी के किसी निजी अस्पताल में जाने की कल्पना करें। एक ऐसा निजी अस्पताल जो गरीबों के लिए स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र से राज्य के पीछे हटने का प्रतीक है। जहां डॉक्टर हर बार सांस खींचने और छोड़ने के लाख-लाख रुपए शुल्क लेते हैं। ये सभी प्रतीक बहुत खतरनाक थे और यह आन्दोलन यदि इस तरह समाप्त न हो गया होता तो यह बहुत खतरनाक रूप ले सकता था।

मैं भीड़ के आकार से प्रभावित नहीं थी। मैंने कश्मीर और यहीं दिल्ली (के आन्दोलनों) में इससे ज्यादा भीड़ देखी है। उनकी खबर किसी ने नहीं लिखी। सिर्फ यह कहा गया कि ट्रैफिक जाम बना दिया इन्होंने। बाबरी मस्जिद ढहाए जाते समय इससे ज्यादा भीड़ नारे लगा रही थी। क्या हमारे लिए वह ठीक था।

भविष्य के प्रतिरोध आन्दोलनों को इससे क्या सबक मिल सकता है। ताकतवर लोगों का प्रतिरोध आन्दोलन जहां मीडिया आपके पक्ष में हो, सरकार आपसे डरी हुई हो जहां पुलिस ने खुद को निशस्त्र कर लिया हो, ऐसे कितने आन्दोलन भविष्य में होने जा रहे हैं? मुझे नहीं पता। जब हम यह बात कर रहे हैं मध्य भारत में भारतीय सेना इस देश के सबसे गरीब लोगों से युद्ध करने की तैयारी कर रही है, और मैं आपसे बता सकती हूँ कि वह निशस्त्र नहीं होगी। तो मुझे नहीं पता कि आप ऐसे प्रतिरोध आन्दोलन से क्या सबक ले सकते हैं जिसे इतने विशेषाधिकार प्राप्त हों।

साभार : 'सीएनएन-आईबीएन' की पत्रकार सागरिका घोष के साथ हुई अरुंधती राय की बातचीत के अंशों का अनुवाद मनोज पटेल द्वारा अपने ब्लॉग 'पढ़ते-पढ़ते' के लिए किया गया।

आस्था पर आधारित इतिहास बोध

■ कुमार नरेंद्र सिंह

क्या आस्था इतिहास का आधार हो सकती है? या फिर यह कि क्या आस्था के आधार पर इतिहास की व्याख्या करना उचित है? इस सवाल का जवाब निश्चित रूप से नकारात्मक ही हो सकता है। कोई भी तर्कशील व्यक्ति यही कहेगा कि आस्था से इतिहास निर्धारित नहीं होता और न उसे होना चाहिए, क्योंकि अगर आस्था के आधार पर इतिहास की व्याख्या की जाने लगी तब तो भयानक अराजक स्थिति पैदा हो जाएगी। तब यह प्रक्रिया सिर्फ इतिहास तक ही सीमित नहीं रहेगी बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में हावी हो जाएगी। सोचिए कि तब क्या होगा, जब सारे ज्ञान-विज्ञान, शोध, समझदारी आस्था के जरिए तय होने लगेंगे। जिस ज्ञान का मेल आस्था से नहीं होगा, उसे कूड़ेदान में फेंक दिया जाएगा, ज्ञान की ज्योति जलाने वालों को आस्था के नाम पर बलि चढ़ाया जाएगा। इतना ही नहीं, आस्था के विपरीत या उससे अलग सोच रखने वालों के लिए कोई जगह नहीं बचेगी और हमें आस्था का गुलाम बना दिया जाएगा। विवेक और तर्क का गला घोंट दिया जाएगा और किसी विशेष धर्म, विचार और विचारधारा को ही एकमात्र सही समझा, समझाया जाएगा। इसका सबसे दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम यह होगा कि भारत की बहुलतावादी संस्कृति का नाश हो जाएगा और तानाशाही के लिए जगह बन जाएगी। यहां इस बात का उल्लेख करना जरूरी है कि भारत की बहुलतावादी संस्कृति फासीवाद की राह में सबसे बड़ी बाधा है। ऐसे में कहे बिना भी स्पष्ट हो जाता है कि रामानुजन के लेख को बी.ए. इतिहास पाठ्यक्रम से निकालने और निकलवाने वाले लोग और चाहे कुछ भी हों, लेकिन भारत की कभी न खत्म होने वाली परंपरा की अवधारणा में उनका कतई विश्वास नहीं है।

दिल्ली विश्वविद्यालय के इतिहास के स्नातक पाठ्यक्रम से ए.के. रामानुजन द्वारा लिखे गए लेख : 'थ्री हंड्रेड रामयंस, फाइव एक्जांपल्स एंड थ्री थॉट्स ऑन ट्रांसलेशन' को हटाया जाना वास्तव में सांस्कृतिक फासीवाद की दिशा में इतिहास को मोड़ने की एक कोशिश है और इसीलिए इसे इसी रूप में ही देखा जाना चाहिए। यहां इस बात का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि रामानुजन के लेख पर सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिल्ली विश्वविद्यालय से राय मांग जाने पर विश्वविद्यालय ने जो चार विशेषज्ञों की जो समिति बनाई, उसके तीन सदस्यों ने लेख को महत्वपूर्ण बताने के साथ-साथ पाठ्यक्रम में रखे जाने की जरूरत भी बताई, सिर्फ एक सदस्य ने अपनी असहमति जताई। लेकिन विडंबना देखिये कि इसके बावजूद उसे पाठ्यक्रम से हटा दिया गया। आश्चर्य की बात तो यह भी है कि अकादमिक काउंसिल के भी सिर्फ नौ सदस्य ही लेख पक्ष में खड़े हुए, बाकी सदस्यों ने मौनी व्रत धारण कर लिया। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनकी खामोशी वास्तव में अकादमिक काउंसिल के फैसले से सहमति ही थी। जो लोग रामानुजन के लेख का विरोध कर रहे हैं, वे भी जानते हैं कि इतिहास का निर्धारण आस्था के आधार पर नहीं होता, अपने छात्रों को भी वे ऐसा ही बताते हैं, लेकिन अपने व्यक्तिगत जीवन में वे आस्था के गुलाम हैं, इसलिए उनकी दृष्टि आस्था से इतर देखने को तैयार नहीं होती। रामानुजन के लेख के विरोध में खड़े तमाम लोग क्या यह नहीं जानते कि दुनिया भर में तीन सौ ही नहीं, उससे ज़्यादा रामायण हैं और सभी के बीच कुछ न कुछ अंतर है। रामानुजन ने अपने लेख में जो कुछ भी लिखा है, वह तथ्यात्मक है और इसका सत्यापन कोई भी कर सकता है। यदि दुनियाभर में राम की कथा एक ही होती, तो माना जा सकता था कि रामानुजन की सोच विकृत है या उसका उद्देश्य गलत है लेकिन अनेक रामायण होने की पुष्टि तो कोई अदना आदमी भी कर सकता है। क्या विरोध करने वाले किसी एक रामायण को छोड़कर रामायण के सभी अन्य पाठों को जला देंगे? शायद जला भी डालें लेकिन ऐसा करना उनके वश में नहीं है।

ए.के.रामानुजन का लेख राम की खोई हुई अंगूठी से शुरू होता है, जिसे खोजने के लिए हनुमान पाताल लोक पहुंचते हैं और वहां के राजा से राम की अंगूठी मांगते हैं। पाताल का राजा एक थाली में ढेर सारी अंगूठियां लाकर हनुमान को देता है और कहता है कि आप अपने राम की अंगूठी खोज लें। हनुमान जब उन अंगूठियों को देखते हैं तो आश्चर्य में पड़ जाते हैं क्योंकि वे सारी अंगूठियां राम की ही हैं। उन्हें आश्चर्य में देखकर पाताल लोक का राजा उन्हें बताता है कि वास्तव में वे जितनी अंगूठियां देख रहे हैं, उतने राम हो चुके हैं। जब राम अपना समय पूरा कर लेते हैं तो उनकी अंगूठी उनकी उंगली से निकल कर पाताल में पहुंच जाती है। राम की यह कथा हमें बताती है कि राम की परंपरा एक जीवंत परंपरा है, जो हमेशा आगे बढ़ती रहती है। ए.के. रामानुजन के लेख का विरोध करने वालों को क्या पता है कि रामायण की कथा 20वीं शताब्दी तक लिखी जाती रही है। ऐसे में कथाओं में भी परिवर्तन स्वाभाविक है। सच तो यह है कि परंपरा स्युत कोई भी कथा, आख्यान अपने मूल स्वर को सर्वदा के लिए कायम नहीं रख सकता। विभिन्न मानव समूह अपने-अपने समाज और संस्कृति के हिसाब से राम के स्वरूप को अपनाते रहे हैं। सच तो यह है कि तुलसीदास की यह चौपाई 'जाकि रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देख तिन तैसी' का असली अर्थ तो तीन सौ रामायण होने में ही दिखाई देता है। हर नई राम कथा के साथ उसकी सुगंध बढ़ती जाती है, उसका सौंदर्य खिलता जाता है और उसकी व्यापकता बढ़ती जाती है। अकारण नहीं कि भारत की लगभग सभी भाषाओं के पास अपने-अपने राम हैं। अगर एक राम कथा सबको संतुष्ट कर पाती तो फिर इतने रामायण की जरूरत ही क्या थी, लोगों ने अपने-अपने हिसाब से राम की मूर्ति अपने दिल में बसा रखी है। ऐसे में राम को किसी एक पुस्तक, लेखक, समुदाय, धर्म और विचारधारा के साथ जोड़कर देखना उनकी विराटता को कम करना ही है। लेकिन लगता है कि धुर हिंदूवादियों को राम का यह विराट स्वरूप पसंद नहीं है। उन्हें लगता है कि यदि सबके अपने-अपने राम हो गए तो फिर उसकी राम की परिकल्पना जो उसकी संकुचित दृष्टि और विशेष विचारधारा के आधार पर निर्मित है, उसका क्या होगा। दरअसल, इन तथाकथित रामभक्तों को ऐसे राम नहीं चाहिए जिन्हें वे अपनी विचारधारा के घरौंदे में कैद न कर सकें। उन्हें वही राम चाहिए जो सिर्फ उनके लिए हों और जो उनके क्षुद्र राजनैतिक उद्देश्यों को पूरा करते हों। एक तरह से यह सामी धर्म की नकल है, जो एक पुस्तक, एक धर्म और एक ईश्वर में विश्वास करता है। यह हिंदू धर्म को असहिष्णु, आक्रामक और फासीवादी बनाने की एक कोशिश है। ये ताकतें अपने उद्देश्य को हासिल करने के लिए तमाम बौद्धिक कवायदों को अपनी विचारधारा के दृष्टिकोण से संचालित करना चाहती हैं। वे चाहती हैं कि सिर्फ उनके कहे को स्वीकार किया जाए। राजनीतिक थॉट की किताबों में पढ़ा था कि फासीवाद संस्कृति विरोधी होता है, अब उसे देख भी रहे हैं। उग्र हिंदूवादियों की यह जमात हमारी सांस्कृतिक चेतना को कुंद करना चाहती है और देश की बहुलतावादी संस्कृति का विनाश करने पर आमादा है। चंद महीने पहले सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश ने एक फैसले के संदर्भ में टिप्पणी की थी कि भारत की विविधता का कारण यह है कि भारतीय समाज मूल रूप से आप्रवासियों का समाज रहा है। अनेक जातीय समूहों, धर्मों और संस्कृतियों के लोग यहां की ज़मीन को वैचारिक रूप से उर्वर बनाते रहे हैं। आज वही बहुलतावादी संस्कृति हमारी भारतीयता की जीवन रेखा है। अगर इसका विनाश हुआ तो भारत भी एक तालीबानी समाज में परिवर्तित हो जाएगा। सोचिए कि वह समय कितना डरावना होगा, जब किसी भी बौद्धिक उपलब्धि को एक विशेष आस्था रखने वाले समूह के नज़रिए से परखा जाएगा और उस समूह की विचारधारा से इतर हर समाज को गर्हित करार दिया जाएगा। इस तालीबानी मानसिकता का विरोध किया जाना चाहिए और उसे खारिज किया जाना चाहिए। एक बात साफ है और वह यह कि यदि भारत की बहुलवादी संस्कृति नहीं बचेगी तो यह भारत देश भी नहीं बचेगा। आज हमें विशेष रूप से सावधान रहने की जरूरत आन पड़ी है क्योंकि असहिष्णु ताकतें अपना दायरा लगातार बढ़ाते जा रही हैं। राम छवि अपने हिसाब से निर्मित करने का सबको अधिकार है और यही भारतीय बहुलतावादी संस्कृति का आग्रह भी है। इसलिए इस आग्रह का परित्याग किसी के लिए भी नहीं किया जा सकता।

हिंदुस्तान में हिंदुओं का राज है, मुसलमानों का कौन है?

(भरतपुर हत्याकांड : प्राथमिक रिपोर्ट)

जेएनयू और दिल्ली विश्वविद्यालय के 11 छात्रों की एक फैक्ट फाइंडिंग टीम राजस्थान के भरतपुर जिले में हुए गोपालगढ़ हत्याकांड के कारणों और घटनाक्रम का पता लगाने के लिए 25 सितंबर को गोपालगढ़ और आसपास के गांवों में गई। इस टीम में शामिल थेरू अनिर्बान (डीएसयू, जेएनयू), अनुभव (डीएसयू, जेएनयू), आनंद के राज (जेएनयू), गोगोल (डीएसयू, जेएनयू), रेयाज (डीएसयू, जेएनयू), श्रीरूपा (जेएनयू), श्रिया (डीएसयू, जेएनयू), अदीद (सीएफआई), शोभन (डीएसयू, डीयू) और सुशील (डीएसयू, डीयू)। इस दौरान हम चार गांवों में गए और हमने तीन दर्जन से अधिक लोगों से बात की। इस हत्याकांड में मारे गए लोगों के परिजनों, घटनास्थल पर मौजूद चश्मदीद गवाहों और हत्याकांड में जीवित बच गए लोगों, घायलों और पीड़ित समुदाय के दूसरे अनेक सदस्यों से हुई बातों के आधार पर हम मुस्लिम समुदाय पर प्रशासन के पूरे संरक्षण में हुए इस सांप्रदायिक फासीवादी हमले की आरंभिक रिपोर्ट प्रस्तुत कर रहे हैं। आगे हम एक विस्तृत रिपोर्ट भी जारी करेंगे।

गोपालगढ़ के लिए रवाना होते समय हमारे पास इस हत्याकांड से जुड़ी जानकारियां सीमित थीं। अखबारों और दूसरे समाचार माध्यमों को देखते हुए लगा कि इस हत्याकांड की खबरों को जानबूझ कर छुपाया जा रहा है। जिन कुछेक अखबारों में इसकी खबरें आईं भी, वो आधी-अधूरी ही नहीं थीं, बल्कि उनमें घटनाओं को पुलिस और सरकार के नजरिए से पेश किया गया था। इसने पीड़ितों को अपराधियों के रूप में और अपराधियों को पीड़ितों के रूप में लोगों के सामने रखा। केवल एक अंगरेजी अखबार ने कुछ खबरें प्रकाशित की थीं, जिनमें पीड़ित मुसलिम समुदाय का पक्ष जानने की कोशिश की गई थी और इस हत्याकांड के पीछे की असली ताकतों के संकेत दिए गए थे।

ये संकेत तब नामों और चेहरों में बदल गए जब हम भरतपुर जिले में दाखिल हुए. जिले के पापरा, जोतरू हल्ला (अंधवाड़ी), ठेकरी, हुजरा, पिपरौली आदि गांवों और गोपालगढ़ कस्बे के पीड़ित मुस्लिम समुदाय के लोगों ने एक के बाद एक जो कहानियां बताईं वो एक बार फिर भारतीय राज्य के फासीवादी चरित्र को सामने ले आती हैं और राज्य के साथ गुर्जर तबके की सामंती ताकतों तथा आरएसएस, विश्व हिंदू परिषद और बजरंग दल के तालमेल को साबित करती हैं।

घटनाक्रम की शुरुआत 13 सितंबर से हुई। गोपालगढ़ कस्बे में करीब 50 घर मुस्लिम परिवारों के हैं, जिनमें से अधिकतर मेव हैं। इस समुदाय की लगभग साढ़े ग्यारह बीघे जमीन के एक टुकड़े पर आपस में लगी हुई एक मस्जिद है, ईदगाह है और कब्रिस्तान की जमीन है। मस्जिद और ईदगाह पर पक्का निर्माण है, जबकि कब्रिस्तान की जमीन पर फिलहाल कोई निर्माण नहीं है। 1928 से यह वक्फ की संपत्ति है और कम से कम 40 साल पहले इस जमीन के एक टुकड़े को कब्रिस्तान घोषित किया गया था। लेकिन इस जमीन पर स्थानीय गुर्जर समुदाय के एक सदस्य और गोपालगढ़ के सरपंच ने बार-बार गैर-कानूनी रूप से कब्जा करने की कोशिश की है। मेव मुस्लिमों की तरफ से यह मामला दो बार स्थानीय एसडीएम अदालत में ले जाया गया, जहां से दोनों बार फैसला मुस्लिम समुदाय के पक्ष में आया है। 12 सितंबर को एसडीएम अदालत ने सरपंच को यह जमीन खाली करने का नोटिस दिया था, जिसके बाद मस्जिद के इमाम हाफिज अब्दुल राशीद और मस्जिद कमेटी के दो और सदस्य सरपंच के पास इस जमीन को खाली करने के लिए कहने गए। इस पर सरपंच और दूसरे स्थानीय गुर्जरों ने मिल कर तीनों को बुरी तरह पीटा।

इमाम और कमेटी पर हमले की इस खबर से मुस्लिम समुदाय में आक्रोश की लहर दौड़ गई। उस रात को जब मेव मुस्लिम इस विवाद को अगले दिन की पंचायत में बातचीत के जरिए सुलझाने की तैयारियां कर रहे थे, उस रात गोपालगढ़ में भरतपुर से कम से कम दो सौ आरएसएस, विश्व हिंदू परिषद और बजरंग दल के कार्यकर्ता गुर्जरों के यहां जमा हो रहे थे। उन्होंने आसपास के अनेक गांवों से गुर्जरों को अगले दिन गोपालगढ़ आने के निर्देश दिए। अगले दिन 14 सितंबर को जब इस मामले को निबटाने के लिए स्थानीय थाने में दो विधायक और दोनों समुदायों के लोग जमा हुए तो केरवा, भैंसोड़ा, बुराना, बुरानी, पहाड़ी, पांडे का बयाना, बरखेड़ा, बौड़ोली और नावदा के गुर्जर आरएसएस कार्यकर्ताओं के नेतृत्व में गोपालगढ़ को एक तरह से अपने कब्जे में कर चुके थे। उन्होंने सड़कों पर पहरे लगा दिए थे और लोगों का कस्बे में आना-जाना रोकने लगे थे। उधर बैठक में दोनों समुदायों के जिन दो प्रतिनिधियों के ऊपर फैसला लेने की जिम्मेदारी दी गई थी, उन्होंने यह फैसला किया कि जमीन पर उसी समुदाय का अधिकार है, जिसके नाम रेकार्ड में यह जमीन

दर्ज है। इस पर भी सहमति बनती दिखी कि कब्रिस्तान की जमीन पर कब्जे के लिए दोषी व्यक्ति मेवों से माफी मांगें। लेकिन यहीं कुछ गुर्जरों और आरएसएस के लोगों ने इस फैसले को मानने से इनकार कर दिया। उन्होंने थाने की कुर्सियों और दूसरे सामान की तोड़फोड़ शुरू कर दी। मीटिंग में मौजूद अनेक प्रत्यक्षदर्शियों ने बताया कि आरएसएस के लोगों और गुर्जरों ने मीटिंग में मौजूद भरतपुर के डीएम और एसपी के साथ धक्का-मुक्की की और कॉलर पकड़ कर पुलिस को मुस्लिमों के ऊपर फायरिंग का आदेश दिलवाया।

मीटिंग आखिरी दौर में थी, जब पूरे गोपालगढ़ कस्बे में फैले आरएसएस, विहिप, बजरंग दल और गुर्जर समुदाय के हथियारबंद लोग मुस्लिम मुहल्ले पर हमला कर रहे थे। चुन-चुन कर मुस्लिमों की दुकानों को लूट कर आग लगा दी गई। उनके घरों के ताले तोड़ कर सामान लूट लिए गए। इस वक्त सारे मर्द या तो थाने में चल रही मीटिंग में थे या मस्जिद में, इसलिए महिलाएं भीतर के घरों में एक जगह जमा हो गई थीं। इस घर से लगी छत पर चढ़ कर हमलावरों ने महिलाओं के ऊपर भारी पथराव किया। इस घर में 11 दिन बाद भी बिखरे हुए पत्थर पड़े थे और पथराव के निशान मौजूद थे। हमलावर भीड़ एक-एक करके मुस्लिम घरों से सामान लूटती रही और उनकी संपत्ति बरबाद करती रही। यह लूट अभी अगले तीन दिनों तक चलने वाली थी और इसमें इमाम अब्दुल रशीद, अली शेर, अली हुसैम, डॉ० खुर्शीद, नूर मुहम्मद, इसहाक और उम्मी समेत तमाम मुसलिम घरों को तबाह कर दिया जाने वाला था।

दोपहर ढल रही थी और नमाज का वक्त हो रहा था। आस-पास के गांवों के लोग गोपालगढ़ में सामान खरीदने के लिए आते हैं। नमाज का वक्त होते ही स्थानीय मुस्लिम बाशिंदे और खरीदारी करने आए लोग मस्जिद में जमा हुए। पिछले दो दिनों की घटनाओं की वजह से मस्जिद में भीड़ थोड़ी ज्यादा ही थी। पिपरौली गांव के इलियास इसकी एक और वजह बताते हैं। उनके मुताबिक कस्बे में तब यह खबर भी थी कि गुर्जर और आरएसएस-विहिप-बजरंग दल के लोग पुलिस के साथ मिल कर मस्जिद तोड़ने आने वाले हैं। मस्जिद में उस वक्त कम से कम 200 लोग मौजूद थे (कुछ लोग यह संख्या 500 से हजार तक बता रहे थे)। जोतरू हल्ला के 35 वर्षीय सपात खान उनमें से एक थे। उन्हें याद है कि उन्होंने नमाज पढ़नी शुरू ही की थी कि मस्जिद पर फायरिंग शुरू हुई।

पुलिस का दंगा नियंत्रण वाहन मस्जिद के ठीक सामने खड़ा हुआ और उसने मस्जिद पर फायरिंग शुरू की। मस्जिद से बाहर निकलने के दोनों दरवाजों पर गुर्जर और आरएसएस के लोग हथियारों के साथ खड़े थे। इसलिए मस्जिद के भीतर घिरे लोग पीछे की तरफ की एक पतली दीवार तोड़ कर भागने लगे। सपात खान को भागने के क्रम में पांव में गोली लगी और वे गिर पड़े। उन्होंने करीब दस लोगों को गोलियों से जख्मी होकर दम तोड़ते देखा। फर्श पर पड़े हुए उन्होंने देखा कि गुर्जर और आरएसएस के लोग पुलिस की गोलियों से जख्मी लोगों के पेट में लाठी और फरसा मार कर लोगों की जान ले रहे थे। फायरिंग रुकने के बाद जब दर्जनों लोग मस्जिद की फर्श पर घायल और मरे हुए पड़े थे, तो उनके शरीर पर से गोलियों के निशान हटाने के लिए उनके हाथ-पांव काटे गए। घायलों को और लाशों को गुर्जर और आरएसएस के लोग पुलिस की गाड़ी में लाद रहे थे। सपात खान भी उनमें से एक थे। गाड़ी में लादे जाने के बाद वे बेहोश हो गए। पांचवें दिन जब उन्हें होश आया तो उन्होंने खुद को भरतपुर हॉस्पिटल में पाया। वे खुशकिस्मत रहे कि वे जिंदा जलाए जाने से बच गए, लेकिन पथरौली के शब्बीर, लिवाशने के इस्माइल, पिलसु के हमीद, ठेकरी के उमर, खटकरा के कालू खां, जोतरू हल्ला के ईसा खां उतने खुशकिस्मत नहीं थे। उनमें से कइयों को तेल छिड़क कर जिंदा जलाने की कोशिश की गई। ये सारे लोग जयपुर के सवाई मान सिंह हॉस्टिपल में अब तक भरती हैं। घायलों में से हत्याकांड के 11 दिन बाद 25 सितंबर को दम तोड़ा, जिस दिन हम गोपालगढ़ में मौजूद थे।

लेकिन मस्जिद में मारे गए और घायल हुए कई लोगों को जला दिया गया। उन्हें मस्जिद की सीढ़ियों से महज दस कदम दूर सरसों की सूखी लकड़ी पर रख कर जलाया गया। वहां अधजली हड्डियां, जूते और कपड़ों के टुकड़े पड़े हुए हैं। यहां से एक-डेढ़ किमी दूर एक जंगल में भी अधजली हड्डियां मिली हैं। मस्जिद से सटी ईदगाह में एक कुआं है, जिसमें से घटना के तीन दिनों बाद तीन अधजली लाशें मिली थीं। कुएं के पत्थर पर जली हुई लाशों को घसीटने के निशान बारिश और 11 दिन बीत जाने के बावजूद बने हुए हैं। ईदगाह में लाशों को जलाने के लिए लाए गए डीजल से भरा एक टिन रखा हुआ है। आसपास के इलाके पर पुलिस का पहरा है। जिस मस्जिद में यह हत्याकांड हुआ, उसमें पुलिस किसी को जाने की इजाजत नहीं दे रही है। लेकिन बाहर से भी साफ दिखता है कि मस्जिद में कितनी तबाही हुई है। सारी चीजें टूटी हुई हैं और फर्श पर बिखरी पड़ी हैं। खून के निशानों को मिटाने की कोशिश की गई है। दीवार पर गोलियों के कम से कम 50 निशान मौजूद हैं, जिन्हें सीमेंट लगा कर भरा गया है। जाहिर है कि यह काम पुलिस या उसकी मरजी से किसी आदमी ने किए हैं। गौर करने की बात यह भी है कि घटना के बाद से मस्जिद में मुसलमानों को घुसने नहीं दिया जा रहा है।

जिन्होंने पूरी घटना अपनी आंखों से देखी और मारे जाने से बच गए उनके मुताबिक हमले की सारी कार्रवाई इतनी व्यवस्थित और संगठित थी कि इससे साबित होता है कि इसकी योजना पहले से बनाई गई थी। गुर्जरों और आरएसएस की हत्यारी भीड़ का नेतृत्व गोपालगढ़ के आरएसएस नेता केशऋषि मास्टर, जवाहर सिंह (बेडम) और भोला गूजर (पहाड़ी) कर रहे थे। इसमें

आरएसएस द्वारा संचालित एक 'आदर्श विद्यालय' के शिक्षक भी लुटेरों के साथ शामिल थे, जिनकी पहचान उसी विद्यालय में पढ़ने वाले एक मुसलिम छात्र ने की। छठी कक्षा में पढ़ने वाले सखावत की नई साइकिल इस लुटेरी भीड़ ने छीन ली। वह उस शिक्षक को 'गुरुजी' के नाम से जानता है।

घटना के बाद गोपालगढ़ के मुस्लिम परिवार घर छोड़ कर अपने रिश्तेदारों के यहां रह रहे हैं। अधिकतर घरों में कोई नहीं है। कुछ में ताला लगा है, लेकिन बाकी घरों के दरवाजे और कुंडियां गुर्जर-संघी लुटेरों ने उखाड़ ली हैं। जिस दिन हम गोपालगढ़ में थे, एकाध लोग अपने घरों की खबर लेने के लिए कस्बे में लौटे थे। गोपालगढ़ में कर्फ्यू रहता है लेकिन पिपरौली के इलियास बताते हैं कि यह कर्फ्यू सिर्फ मुसलमानों पर ही लागू होता है। कर्फ्यू के दौरान भी गुर्जर और आरएसएस के लोग खुलेआम कस्बे में घूमते हैं। वे यह देख कर इतने हताश थे कि वे पूछते हैं, 'हिंदुस्तान में हिंदुओं का राज है। मुसलमानों का कौन है?'

सरकार दावा कर रही है कि इस घटना में महज तीन लोग मारे गए हैं। लेकिन लोग बताते हैं कि कम से कम 20 लोग इस हमले में मारे गए हैं। उनमें से सारे मुस्लिम हैं। जख्मी लोगों की संख्या भी लगभग इतनी ही है और वे सारे लोग भी मुस्लिम हैं। इसके अलावा कम से कम तीन लोग लापता हैं। इनमें से दो हैं, ढौड़ कलां (फिरोजपुर झिरका) के मुहम्मद शौकीन और चुल्हौरा के अज्जू। इतने बड़े हत्याकांड को दो समुदायों का दंगा कह कर असली अपराधियों को बचाने की कोशिश की जा रही है। लोग पूछते हैं कि अगर यह दंगा था तो गुर्जरों और पुलिस की तरफ से कोई घायल तक क्यों नहीं हुआ। वे लोग जानते हैं कि हमलावरों में कौन लोग थे, लेकिन किसी के खिलाफ एफआईआर तक दर्ज नहीं हुआ है। उल्टे, लोगों की शिकायत है कि 600 मुसलमानों के खिलाफ पुलिस ने मामला दर्ज कर लिया है। हालांकि डीएम और एसपी का तबादला हो गया है, लेकिन लोग तबादलों से संतुष्ट नहीं हैं। उनकी साफ मांग है कि मुसलमानों पर गोलियां चलाने वालों पर हत्या के मुकदमे दर्ज किए जाएं। इसको लेकर अंधवाड़ी में पिछले छह दिनों से धरना चल रहा है, जिसमें रोज लगभग आठ सौ से एक हजार लोग शामिल होते हैं।

मुस्लिमों पर गुर्जरों का यह हमला कोई नई बात नहीं है। छोटे-मोटे हमले लगातार होते रहे हैं। यहां खेती आजीविका का मुख्य साधन है। मेव मुसलमानों की यहां खासी आबादी है, लेकिन उनमें से आधे से भी कम लोगों के पास जमीन है. जमीन का आकार भी औसतन दो से तीन बीघे है, जिसमें सिंचाई निजी बोरवेल से होती है। बाकी के मेव छोटे मोटे धंधे करते हैं, दुकान चलाते हैं और पहाड़ों पर पत्थर काटते हैं। गुर्जर यहां पारंपरिक रूप से जमीन के मालिक रहे हैं। उनके पास न केवल बड़ी जोतें हैं, बल्कि दूसरे कारोबारों पर भी उनका वर्चस्व है। खेती, इलाज और शादी वगैरह के खर्चों के लिए मेव अक्सर गुर्जरों से कर्ज लेते हैं, जिस पर उन्हें भारी ब्याज चुकाना पड़ता है (गांव वालों ने बताया कि उन्हें चौगुनी रकम लौटानी पड़ती है)। देर होने या नहीं चुका पाने पर अक्सर मुस्लिमों-मेवों पर हमले किए जाते हैं- इसमें धमकाने, गाली देने से लेकर मार-पीट तक शामिल है। इस तरह जमीन का सवाल यहां एक अहम सवाल है।

इस नजरिए से गोपालगढ़ का हत्याकांड नया नहीं है। कानपुर, मेरठ, बंबई, सूरत... हर जगह अल्पसंख्यकों, मुसलमानों को उनके नाममात्र के संसाधनों से भी उजाड़ने और उनकी संपत्तियों पर कब्जा करने के लिए प्रशासन, पुलिस और संघ गिरोह की तरफ से मिले-जुले हमले किए जाते रहे हैं, गोपालगढ़ उनमें सबसे ताजा हमला है। इसी जून में बिहार के फारबिसगंज में अपनी जमीन पर एक कंपनी के कब्जे का विरोध कर रहे मुसलमानों पर गोली चलाकर पुलिस ने चार मुस्लिमों की हत्या कर दी थी और नीतीश सरकार के इशारों पर कॉरपोरेट मीडिया ने इस खबर को दबाने की भरपूर कोशिश की।

गोपालगढ़ में भी कॉरपोरेट मीडिया और सरकार ने तथ्यों को दबाने की कोशिश की। मिसाल के तौर पर इस तथ्य का जिक्र कहीं नहीं किया गया कि डीएम और दूसरे अधिकारियों द्वारा आरएसएस नेताओं के कहने पर गोली चलाने का आदेश दिए जाने के बाद पुलिस के शस्त्रगार को खोल दिया गया और पुलिस के साथ-साथ गुर्जरों और आरएसएस कार्यकर्ताओं को भी पुलिस के शस्त्रगार से आधुनिक हथियार दिए गए। मस्जिद पर हुई गोलीबारी में पुलिस के हथियारों का उपयोग ही हुआ, लेकिन उन हथियारों को चलाने वालों में गुर्जर और आरएसएस के लोग भी शामिल थे। यह दिखाता है कि इन तीनों ताकतों की आपस में कितनी मिलीभगत थी। इलाके के मेव शिक्षा और रोजगार में बहुत पिछड़े हुए हैं। सरकारी-गैर सरकारी नौकरियों में भी उनका हिस्सा नगण्य है। इसके उलट गुर्जर समुदाय के लोगों की नौकरियों में भरमार है. जिस पुलिस ने मेव लोगों पर हमला किया, उसमें बहुसंख्या गुर्जरों की ही थी और उसमें एक भी मुस्लिम नहीं था। गुर्जरों के बीच आरएसएस और उसके सहयोगी संगठनों का काफी काम है और इसका असर पुलिसबलों पर भी साफ दिखता है। इसीलिए जब पुलिस मस्जिद पर फायरिंग करने पहुंची तो उसकी कतारों में गुर्जर और आरएसएस के लोग भी शामिल थे। जाहिर है कि यह दो समुदायों के बीच कोई दंगा का मामला नहीं है, जैसा कि इसे बताया जा रहा है, बल्कि गोपालगढ़ में हुई हत्याएं एक सुनियोजित हत्याकांड हैं।

साभार : http://dsujnu.blogspot.com/

विकास की वर्तमान संरचना को नकारते ओड़िसा के जनगण

■ फैसल अनुराग

...पिछले अंक से जारी

झारखण्ड के संदर्भ में विस्थापन औपनिवेशिक काल से ही एक बड़ा मुद्दा रहा है और इसके कारण कई शृंखलाबद्ध ऐतिहासिक संघर्ष भी हुए हैं। ये संघर्ष खास तौर पर सांस्कृतिक संसाधनों का अधिकार आदिवासियों के हाथों में ही रहने देने के लिए हुए लेकिन यह देखा गया है कि राज्य ने अपने दमनकारी ताकतों के बल पर बड़ी संख्या में आदिवासियों की ज़मीन अधिग्रहित की और बांधों, अभयारण्यों, खदानों और औद्योगिक प्रतिष्ठानों की एक शृंखला ही स्थापित कर दी। इससे संबंधित आंकड़े नीचे दिए जा रहे हैं :

झारखंड़ में जन-विरोधी विकास कार्यों के कारण 1951 से 1995 के बीच विस्थापित हुए आबादी के आंकड़े निम्नलिखित टेबल-1 पर दर्शाए गए हैं :

परियोजना	**आदिवासी**	%	**अनसू. जाति**	%	**अन्य**	%	**कुल**
जल परियोजनाएं	175127	75.2	17554	07.5	40287	13.3	232968
उद्योग	29888	34.0	19956	22.7	87969	4.3	87896
उत्खनन	835543	29.0	63342	15.7	320076	54.6	402882
सुरक्षा संबंधी	237147	89.7	18529	07.0	8677	03.2	264353
सेंचुरी व राष्ट्रीय पार्क	80867	15.8	87601	17.1	339266	66.7	509918
आधारभूत संरचना विकास	13800	27.8	5900	11.8	30300	60.6	50000
कुल	**620372**	**41.00**	**212892**	**14.0**	**676575**	**45.0**	**150317**

*स्रोत-भारतीय सामाजिक संस्थान, दिल्ली। **टेबल-1***

यह बिल्कुल स्पष्ट है कि झारखंड में पहले ही ऊपर वर्णित परियोजनाओं के कारण बड़े पैमाने में लोग विस्थापित हो चुके हैं और राज्य में सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक संदर्भ में यह स्थिति एक दूसरे रूप में भी प्रतिबिंबित होती है। विस्थापन के कारण राज्य की आदिवासी जनता देश के दूसरे जगहों में बस चुकी है और वहां उन्हें नागरिक अधिकारों से भी वंचित किया गया है एवं विकास प्रक्रिया की मुख्य धारा से भी अलग रखा गया है। हम पं. बंगाल और असम के चाय-बगानों में आदिवासियों की स्थिति को देख सकते हैं और उसका मूल्यांकन कर सकते हैं। ये चाय-बगान मजदूर मूल रूप से झारखंड़, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ के आदिवासी बहुल जिलों से हैं। असम में आदिवासियों पर हुए हालिया हमला भी गंभीर विश्लेषण का विषय है और इसे झारखंड राज्य की विस्थापन की प्रक्रिया से जोड़ कर देखा जाना चाहिए। इस कारण 2001 की जनगणना भी राज्य में कुछ अलग ही तस्वीर ही पेश कर रही है और जनगणना के निष्कर्षों के आधार पर राज्य की राजनीतिक स्थिति भी बदल रही है। राज्य की सत्तासीन पार्टी राज्य के विकास की दूरदृष्टि खो चुकी है और वो भी पुराने अपनाये गये विकास पथ का ही अनुसरण कर रही है और फलस्वरूप हम ऊपर के आंकड़ों में यह देख सकते हैं कि किस तरह आदिवासी आबादी विस्थापित हुई। इस कारण राज्य में किसी भी तरह के विस्थापन के विरोध में प्रतिरोध की संस्कृति को बढ़ावा देने की ज़रूरत है क्योंकि इसने मानव विकास पर पूरी तरह नकारात्मक प्रभाव ही डाला है।

प. बंगाल के परिप्रेक्ष्य में-औपनिवेशिक काल में विस्थापन बंगाल की एक मुख्य समस्या बना। आज़ादी के बाद पंचवर्षीय परियोजनाओं के दौरान डैम, सिंचाई, विद्युत संयंत्रों, आरक्षित वनों, शरणार्थियों के पुनर्वास, परिवहन, उद्योग, शहरीकरण की बड़ी परियोजनाओं को क्रियान्वित करने के फलस्वरूप विस्थापन की समस्या और विकराल हुई है। वैश्वीकरण के आविर्भाव के साथ ही यह काफी बड़ा रूप ले चुका है। यह आज राष्ट्रीय महत्व का गंभीर विषय है।

सरकार द्वारा डैम व कृत्रिम जलाशयों (Reservoirs), सिंचाई परियोजनाओं, आरक्षित वनों, शहर निर्माण, औद्योगिक क्षेत्र, ताप विद्युत इकाईयों, मुक्त व्यापार क्षेत्रों और सड़कों के

निर्माण व विस्तारीकरण के नाम पर हजारों एकड़ कृषि भूमि का अधिग्रहण किया गया। ये अधिग्रहण किसानों के उनके आजीविका, आवास और जीवन के बेदखली के रूप में सामने आये। इसने कृषि मजदूरों की आजीविका पर काफी बुरा प्रभाव डाला है और उन पर भी जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि क्षेत्र पर आश्रित थे।

औपनिवेशिक काल में स्वतंत्रता आन्दोलन को दबाने के लिए एक योजना के तहत 1905 में बंगाल को पूर्वी व पश्चिमी बंगाल में बाँट दिया गया और हमने देखा है कि इस कारण दोनों ही ओर बड़ी संख्या में लोग विस्थापित हुए और उनका नरसंहार हुआ। इसी तरह 1971 की लड़ाई के दौरान पूर्वी बंगाल (बांग्लादेश) की एक बड़ी आबादी ने पश्चिम बंगाल में शरण ली और वे एक बार फिर राज्य में आधारभूत संरचना के विकास की प्रक्रिया में राज्य के अंदर ही विस्थापित हुए। ये लोग अब तक राशन कार्ड, आवास अधिकार, बिजली, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे मूलभूत नागरिक अधिकारों से वंचित हैं और राजनीतिक दलों के लिए यह सब राजनीतिक एजेंडा भर बन गया है। कोलकाता में आधारभूत संरचना के विकास के लिए 1993 में ऑपरेशन सनशाइन के तहत शहर से हॉकरों को हटाया गया। विकास के नाम पर कुल 1640 छोटे दुकानों को उजाड़ दिया गया था।

श्रमिकों को राज्य द्वारा कारखानों से भी विस्थापित किया गया। जैसे कि कोलकाता में आवास परियोजना के लिए जॉय इंजीनियरिंग (ऊशा) से और राष्ट्रीय राज्य पथ निर्माण के लिए सिलिगुड़ी में चाँदमॉनी टी स्टेट से राज्य सरकार द्वारा ज़मीनें ली गईं और इस कारण वहाँ काम कर रहे मजदूरों को विस्थापित होना पड़ा। जंबुद्वीप से पर्यावरणीय कारणों से मछुआरों को बेदखल किया गया। विश्व बैंक के अनुसार फरक्का सुपर थर्मल पावर प्लांट ने गाँवों से 53,500 लोगों को विस्थापित किया, इस परियोजना की शुरुआत 1975 में हुई थी और यह वर्ष 1990 में पूरी हुई। विस्थापन की यह प्रक्रिया मालदा के क्षेत्र में अभी भी जारी है क्योंकि वहाँ गंगा के कटाव के कारण लोगों को हटाया जा रहा है।

फाल्ता मुक्त क्षेत्र के लिए भूमि अधिग्रहण के समय लोगों से ज़मीन संबंधी कागजात प्रस्तुत करने को कहा गया और वहाँ की जनता का ना तो पुनर्वास हुआ और न ही जनता वहाँ मुआवजे में मिली अच्छी रकम से संतुष्ट है। राजाहाट में नई शहर परियोजना के निर्माण ने भी राज्य में लोगों को आजीविका से बेदखल किया है। वर्तमान में हम सिंगुर और नंदीग्राम में ज़मीन अधिग्रहण की प्रक्रिया को देख सकते हैं, जहाँ गोलियाँ नीति तय कर रही हैं और लोगों को राज्य को ज़मीन सौंपने के लिए मजबूर किया जा रहा है।

पश्चिम बंगाल में सेज परियोजनाएँ

(केन्द्रीय वाणिज्य विभाग के मंजूरी-बोर्ड से 06.10.06 को प्राप्त सैद्धांतिक सेज स्वीकृतियाँ)। देखें टेबल-2.

यह तो साफ है कि प. बंगाल की जनता ने इतिहास के विभिन्न काल खंडों में विस्थापन का सामना किया है लेकिन वर्तमान में भी ये विस्थापन के सवाल पर काफी कठिन दौर से गुजर रहे हैं, जहाँ हम सभी जानते हैं कि सिंगुर और नंदीग्राम में भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया काफी पीड़ादायक रही और इस प्रक्रिया में हिंसा भी हुई। विस्थापन और भूमि अधिग्रहण के मामले में सत्तासीन दलों, चाहे वो वामपंथी हो या दक्षिणपंथी या मध्यमार्गी, का चरित्र एक समान है। ऊपर वर्णित टेबल हमें यह

कंपनी	स्थान	क्षेत्रफल	प्रकार
Bengal Srei Infrastructure development Ltd.	Kharagpur	100 हेक्टेयर	ऑटो स्पेयर्स
Salapuria properties Pvt. Ltd.	Barasat- (Barrackpur road and Kalyani express Highway)	100 हेक्टेयर	इलेक्ट्रॉनिक्स्
New Kolkata International development Pvt. Ltd. (Salim Group)	Haldia	5000 हेक्टेयर	अनेक परियोजनाएं
New Kolkata International development Pvt. Ltd. (Salim Group)	Nandigram	4000 हेक्टेयर	केमिकल हब
Videocon Realty & Infrastructure Ltd.	Kharagpur	1000 हेक्टेयर	अनेक परियोजनाएं
Videocon Realty & Infrastructure Ltd.	Suryapur Mouza, 24 Pargana (N)	144 हेक्टेयर	इलेक्ट्रॉनिक्स्
Videocon Realty & Infrastructure Ltd.	Kalyan Bill and Motigacha, 24 Pargana (N)	1080 हेक्टेयर	अनेक परियोजनाएं
SEZ infrastructure Developers	Ulberia- haldia Corridor, National highway No-6	105 हेक्टेयर	अनेक परियोजनाएं

टेबल-2

भी बताता है कि ऊपर बताये गये सेज़ परियोजनाओं को स्थापित करने की कोशिश अगर राज्य करता है तो भविष्य में फिर हिंसा भड़क सकती है। यह पूरी तरह साफ है और सिद्ध भी हो चुका है कि शासक वर्ग का मतलब है कामगारों का शोषण करने वाला, शासक वर्ग का मतलब है साम्राज्यवाद और फासीवाद की स्थापना करने वाला।

बिहार के संदर्भ में - बिहार कई जन संघर्षों को जन्म देने वाला स्थान रहा है और यह वह स्थान भी रहा है जहाँ से शांति की संस्कृति (**अहिंसा**) विदेशों और एशियाई देशों में फैली। यह वह स्थान था जहाँ के ऐतिहासिक शिक्षा संस्थानों ने देश भर के महान दार्शनिकों, आन्दोलनकारियों और नेताओं को ज्ञान दिया। बिहार वह स्थान भी रहा है जहाँ समाजवाद और संपूर्ण क्रांति का मंत्र समय-समय पर हवाओं में गूँजा है।

बिहार से काटकर बने अलग राज्य झारखंड के निर्माण के बाद, बिहार कृषि उत्पादन पर पूरी तरह आश्रित रहने वाला राज्य हो गया। जहाँ बिहार की जनता की आजीविका के लिए ज़मीन और नदियाँ ही मुख्य साधन हैं। हम जानते भी हैं कि बिहार ने सामंतवाद का चरमोत्कर्ष देखा है और यह भी देखा है कि इसी सामंतवादी व्यवस्था का ज़मीन और पानी दोनों पर नियंत्रण रहता है। इस कारण इतिहास से यह भी स्पष्ट है कि यहाँ ज़मींदारों के हाथों से ज़मीन और पानी के नियंत्रण को मुक्त कराने के लिए श्रृंखलाबद्ध जन-आन्दोलन हुए हैं और संसाधनों को आम-आदमी के हाथों में सौंपा भी गया है।

शुरुआती दिनों से ही राज्य का जल-विद्युत उत्पादन और सड़क व रेल संचार के लिए आधारभूत संरचना के निर्माण पर ध्यान रहा है। बिहार एक ऐसा प्रदेश है, जहाँ ढेर सारी नदियाँ बहती हैं और वे एक-दूसरे को आड़े-तिरछे काटती हैं। यह प्रदेश मानसून के दिनों में बाढ़ से प्रभावित रहता है। पहले लोग बाढ़ की इस प्राकृतिक प्रक्रिया से परिचित थे और बाढ़ के पानी और मिट्टी का लाभ कृषि उत्पादन में उठाते थे। लेकिन अनियोजित व अवैज्ञानिक फरक्का बराज, वभिन्न नदियों पर बने बराज, राष्ट्रीय व राज्य उच्च पथों के निर्माण और रेल-पटरियाँ बिछाये जाने के कारण नदियों और वर्षा जल का प्राकृतिक बहाव अवरुद्ध हुआ और बिहार के कई इलाकों में लंबे समय तक रहने वाली जल जमाव की समस्या उत्पन्न हुई। इसने बिहार में एक नई समस्या को जन्म दिया क्योंकि कृषि योग्य भूमि पर 6 महीने से भी ज़्यादा तक जल-जमाव होने के कारण लोगों की खेती पर निर्भरता घटी और इसने अपनी ही ज़मीन पर समाज को आजीविका से विस्थापित कर दिया। 1960 के दशक में राज्य सरकार ने केन्द्र की मदद से सिर्फ कोशी पर 160 बांधों का निर्माण किया, इस निर्माण में राज्य की 25000 हेक्टेयर कृषि भूमि अधिग्रहित की गई। 2007 आते-आते यह पाया गया कि अब तक 3000 डैम और बाँधों का निर्माण किया जा चुका है और इस कार्य में 75000 हेक्टेयर कृषि भूमि अधिग्रहित की जा चुकी है। बाढ़ और जल-जमाव के कारण बिहार के मुजफ्फरपुर, समस्तीपुर, सहरसा, चंपारण, सुपौल, दरभंगा, पटना, बिहारशरीफ, भागलपुर, कटिहार, मधुबनी, सीतामढ़ी, पूर्णिया, मधेपुरा, बेतिया, सीवान, बेगूसराय आदि जिले प्रभावित रहते हैं।

सांप्रदायिक दंगों और हिंसा ने भी राज्य में लोगों को अपनी ज़मीन छोड़ने के लिए मजबूर किया है और आजीविका के दूसरे उपाय ढूँढने के लिए भी। ऐसा भागलपुर जिले और मध्य बिहार में देखा गया है।

बरौनी में तेल-शोधक कारखाने, कहलगाँव में NTPC के निर्माण और मुजफ्फरपुर में पावर-ग्रिड की स्थापना ने भी बड़ी संख्या में लोगों को विस्थापित किया है। इसके अलावा कई अन्य आधारभूत संरचनाओं के विकास के कारण भी लोग विस्थापित हुए हैं। देखें टेबल-3

ऐसा नहीं है कि विकास के लिए सिर्फ देश के पूर्वी राज्यों में ही लोगों को विस्थापित होना पड़ा है, जबकि ऐसा देखा गया है कि छत्तीसगढ़, राजस्थान, पंजाब, अरुणाचल-प्रदेश, मणिपुर, मध्य-प्रदेश, गुजरात, असम, उत्तर-प्रदेश, केरल, तमिलनाडु, आन्ध्र-प्रदेश, नई दिल्ली और अन्य राज्यों में भी लोगों को जबरन अपनी ज़मीन से

परियोजनाएं	प्रभावित गांव	अधिग्रहित भूमि/अधिग्रहित होने वाली भूमि	कुल प्रभावित आबादी
नालंदा आयुध फैक्ट्री	14	15000 एकड़	15000
नालंदा रेल वॉगन फैक्ट्री	03	250 एकड़	15000
प्रस्तावित नालंदा विश्वविद्यालय	09	10000 एकड़	7000
प्रस्तावित पुलिस प्रशिक्षण महाविद्यालय	05	5000 एकड़	7000
प्रस्तावित मेडिकल कॉलेज, पावापुरी	01	200 एकड़	एक पंचायत के लोग
प्रस्तावित इंजीनियरिंग कॉलेज, कल्याण बिगहा	01	200 एकड़	एक पंचायत के लोग
पॉवर ग्रिड कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया की भोजपुर, इकाई	01	25 एकड़	2298

टेबल-3

बेदखल किया गया है। औपनिवेशिक काल के बाद के आज़ाद भारत में विस्थापन कई अलग-अलग रूपों में देखा गया है।

इस प्रक्रिया में बड़े पैमाने पर लोगों ने अपने संविधान प्रदत्त जीने के अधिकार को खो दिया है और हर बार सरकार ने परिवारों को मुआवजा देकर सांत्वना देने का प्रयास किया है। लेकिन यह भारत जैसे देश में काफी दुर्भाग्यपूर्ण है जहां हम कहते हैं कि हम लोकतांत्रिक व्यवस्था में रह रहे हैं। मुआवजा तो हमेशा गरीबों के लिए होता है और तब इस बात पर राजीनतिक दल राजनीति करते हैं और फिर वोट की राजनीति। ऐसा पहले भी हुआ है और वर्तमान में ऐसा कलिंग नगर, काशीपुर, कोइल कारो, नेतरहाट, बस्तर और नंदीग्राम आदि जगहों में मार डाले गये लोगों या गोली झेलने वाले लोगों के परिवारों ने भी महसूस किया है ।

लेकिन आज तक हर जगह लोग सरकार के इस झूठे राजनीतिक झांसे के खिलाफ एकजुट हुए और संघर्ष कर रहे हैं पर इसका दुखद पहलू यह है कि चंद लोगों के विकास के नाम पर लोग जान दे रहे हैं और गोलियां खा रहे हैं, अमीर और ज़्यादा अमीर व गरीब और ज़्यादा गरीब होते जा रहे हैं एवं वे निराश्रित भी होते जा रहे हैं। इन लोगों का संघर्ष औपनिवेशिक काल में अंग्रेज़ों के विरुद्ध था और आज वहीं संघर्ष स्वतंत्र भारत में भी चल रहा है। विस्थापित होने वाले परिवार जान दे रहे हैं और सिविल सोसाइटी व राष्ट्रीय हित की कीमत पर बच्चे अपना बचपन खो रहे हैं। औपनिवेशिक काल में ईस्ट इंडिया सरीखे कम्पनियों की शासन के ऊपर काफी मजबूत पकड़ और प्रभुत्व था और आज उसी तरह मित्तल, एस्सार, टाटा, हिंडालको, नाल्को, रिलायंस, पास्को, जिंदल आदि कम्पनियों का शासन में जबर्दस्त प्रभाव है और इस प्रभाव के कारण सेज़ (विशेष आर्थिक क्षेत्र), विशेष कृषि क्षेत्र, समुद्रों में विशेष मछली मारने के क्षेत्र, बड़ी नदियों पर सेंचुरी, विशेष मार्केटिंग क्षेत्र (मॉल) और बड़े शॉपिंग कॉम्पलेक्स जैसी नीतियॉ बनाई जा रही हैं। शहरी परिप्रेक्ष्य में देखें तो देश में पनप रही मॉल संस्कृति के कारण छोटे दुकानदार भी विस्थापित किये जा रहे हैं। रिलायंस फ्रेश छोटे शहरों में इतने बड़े पैमाने पर सब्जी की बड़ी दुकानें खोल रहा है कि इन शहरों में हजारों हजार की संख्या में खुदरा व्यापारी अपनी आजीविका से विस्थापित हो रहे हैं। शहरों में फ्लाई-ओवर के विकास, अपार्टमेंट, कॉरपोरेट घरानों के कॉम्पलेक्स आदि भी लाखों लोगों को बेदखल कर रहे हैं और परिणामस्वरूप हम बचपन को सड़कों, रेलवे स्टेशनों, ट्रैफिक सिग्नलों पर भटकता देख सकते हैं।

यह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि साम्राज्यवादी व फासिस्ट ताकतों का गठजोड़ कॉरपोरेट घरानों और राजनीतिक दलों के साथ है और इन्होंने बहुत बड़ी आबादी का दमन शुरू कर दिया है एवं शोषित व दमित समुदाय के पास इस देश में कोई विकल्प नहीं है कि वो कहां जीयें या कहां मरें। लेकिन ऐसी स्थिति में भी नेतरहाट, कोयल कारो, उत्तर प्रदेश व नंदीग्राम में सेज़ विरोधी संघर्ष, कलिंग नगर, नंदीग्राम, मुंगेर में परमाणु बिजली संयंत्र के विरुद्ध संघर्ष और देश के अन्य जगहों के संघर्षों ने हमें संघर्ष की राह दिखाई है और इस लोकतांत्रिक ढांचे के अन्दर रहकर ही राज्य सत्ता के साम्राज्यवादी व फासीवादी चरित्र को चुनौती दी है। इस कारण दमनकारी सत्ता को उन परियोजनाओं को वापस लेना पड़ा है जो आजीविका, बचपन और आम आदमी के आश्रय के विस्थापन का कारण बनते हैं और इन्हीं लोगों ने यह नारा दिया है **''न ज़मीन देंगे, न जान देंगे''**। इसने वर्तमान संघर्ष और आन्दोलन को रास्ता दिखाया है और हमें इनको सलाम करना चाहिए क्योंकि उन्होंने इस साम्राज्यवादी व्यवस्था में भी आन्दोलन को सफलता तक पहुंचाया है।

इस परिस्थति में यह स्पष्ट हो चुका है कि केन्द्र और राज्यों में सत्तारूढ़ पार्टियों, चाहे वे वामपंथी हो या मध्यमार्गी हों या दक्षिणपंथी हो, का एक समान दमनकारी चरित्र है, यह नंदीग्राम की घटना के बाद पूरी तरह साफ है। इस घटना से यह भी साफ है कि राजनैतिक दल दमन के लिए किस प्रकार एकजुट हैं और वे तथाकथित विकसित देशों के साम्राज्यवादी ताकतों के समर्थन में हाथ मिला रहे हैं। इसने वर्तमान में विकास की अवधारणा पर एक बहस छेड़ी है और यह सवाल खड़ा किया है कि विकास का वैकल्पिक मॉडल कैसा हो। सरकार जनकल्याण से आम-आदमी के दमन की ओर बढ़ चुकी है और उसका ध्यान जन-समूह से बड़े पैमाने पर राजस्व उगाहने में लगा है।

इस कारण दोस्तो, आने वाले समय में विकास के नाम पर लाखों एकड़ ज़मीन अधिग्रहित की जायेगी और लाखों लोगों को विस्थापित किया जायेगा। क्या हम हाथ में हाथ धरे बैठे रहें और समाजवाद के आने का इंतज़ार करें, नहीं। यह हमारी जिम्मेवारी है कि हम कलिंग नगर और नंदीग्राम की जनता द्वारा दिखाये गये रास्ते पर आगे बढ़ें। इस रास्ते पर हमें और ज्यादा एकजुट होकर आगे बढ़ना होगा और यह वक्त का तकाजा भी है। हमें खुद को संगठित करना होगा, हमें **''अब और विस्थापन नहीं''** का नारा देना होगा, हमें उन लोगों की ओर मदद का हाथ बढ़ाना होगा जो संघर्ष कर रहे हैं और जिन पर विस्थापन का खतरा है। हमारी गहरी प्रतिबद्धता, दृढ़ विश्वास, एकजुटता, सामूहिकता और बंधुता की आज इस मोड़ पर बहुत ज़रूरत है, इन साम्राज्यवादी और फासीवादी ताकतों के विरुद्ध लड़ाई में।

बिरसा मुंडा ने कहा था जब तक जनगण को उनके संसाधनों पर निर्णय लेने का हक नहीं मिल जाता उलगुलान जारी रहेगा। पोस्को उसी उलगुलान का एक मील पत्थर है जिसने शासक वर्ग को पीछे धकेल दिया है।

फाँसी के तख्ते से
जूलियस फूचिक

चेकोस्लोवाकिया का क्रांतिकारी

जूलियस फूचिक ने यह पुस्तक नात्सी जल्लाद के फन्दे की छाया में लिखी थी। इसकी पांडुलिपि के रूप से ही इसके लेखक के अदम्य साहस और अनोखी सूझबूझ का प्रमाण मिल जाता है। इसकी पांडुलिपि हैं कागज की स्लिपें जिन पर पैंसिल से लिखा हुआ है। बाद में यही स्लिपें एक हमदर्द चेक सन्तरी की मदद से पांक्राट्स, प्राग, के गेस्टापो जेल से एक-एक करके चोरी-चोरी बाहर लायी गयीं। फूचिक, जिसे अपने आप से छल करना क़तई मंजूर नहीं था, जानता था कि वह इस खतरों भरी किताब को समाप्त नहीं कर सकेगा। लेकिन तब भी उसका यह विश्वास अपनी जगह पर बिल्कुल दृढ़ था कि उसके अपने देश के लाखों-करोड़ों लोग और दूसरे देशों के फासिस्त-विरोधी जन जल्द ही उसकी इस पुस्तक का उसके ही शब्दों में 'सुखद अंत' लिखेंगे।

...पिछले अंक से जारी

चित्र और रेखाएं-2

'हमारा'

अगर 11 फरवरी 1943 को सवेरे नाश्ते में उस काली सी चाय की जगह जो पता नहीं काहे की बनी थी उन्होंने हमें कोको दिया होता तो भी हमें इस चमत्कार का पता न चलता। क्योंकि उस सुबह एक दूसरा चमत्कार हुआ-एक चेक पुलिसमैन की वर्दी की झलक हमारी कोठरी के पास दिखायी दी।

सिर्फ झलक। हमें काले पतलून और लांगबूट का सिर्फ एक पैर दिखायी दिया। एक गहरी नीली आस्तीन का हाथ ताले के पास पहुँचा, कोठरी के दरवाजे को खोला फिर बन्द कर दिया, फिर गायब हो गया। यह सब इतनी तेज़ी से हुआ कि पन्द्रह मिनट बाद हमें इस बात का यकीन हो जाता कि ऐसी कोई चीज़ हुई ही नहीं।

पांक्राट्स में एक चेक पुलिसमैन। इस एक बात से क्या-क्या नतीजे नहीं निकाले जा सकते!

दो घण्टे के अंदर ही अंदर हम नतीजे निकालने भी लगे थे। कोठरी का दरवाजा फिर खुला और एक चेक पुलिस की टोपी ने अंदर झाँका और हमारे अचम्भे पर मुस्कुराते हुए ओंठों से कहा-

'छुट्टी!'

अब भूल की कोई गुंजाइश न थी। गलियारों में एस. एस. के संतरियों की खाकी-हरी वर्दी के बीच-बीच कई काले धब्बे भी दिखायी देने लगे थे जो हमें बहुत जानदार चमकदार लगे। वे चेक पुलिस अफसर थे।

हमारे लिए इसकी क्या अहमियत हो सकती है? ये कैसे होंगे? कैसे भी हों, उनका यहाँ होना ही बहुत साफ जबान में बहुत सी बातें कहता है। उस हुकूमत का अन्त कितने पास होगा जिसे अब अपनी सबसे नाजुक मशीन में, अपने सबसे महत्वपूर्ण संगठन में जिस पर कि वह टिकी हुई है, उसी राष्ट्र के लोगों को लेना पड़ता है जिन्हें कि वह दबाकर रखना चाहती है! लड़ाई के मोर्चे पर उसे आदमियों की कितनी सख्त कमी होगी जो वह कुछ थोड़े से सैनिकों की लालच में अपनी पुलिस-शक्ति कम करने को तैयार है! तुम्हारा क्या खयाल है, ऐसी हालत में हुकूमत कितने दिन चलेगी?

इसमें तो खैर कोई शक नहीं कि यहाँ पर वे सिर्फ चुने हुए आदमियों को भेजेंगे जो जर्मन संतरियों से भी गये-गुज़रे साबित होंगे, जिनकी चेतनता नष्ट हो गयी होगी और जीत में जिनका विश्वास खो गया होगा। लेकिन यह बात, सिर्फ यह बात कि एस. एस. की जगह चेक पुलिस ले रही है, इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि अन्त अब पास है।

इस बात को हमने इस तरह से समझा।

हम लोगों ने जितना समझा था उससे कहीं ज़्यादा चेक पुलिसमैन निकले। असलियत यह थी कि उस मशीन के पास

अब चुनने-चुनाने की गुंजाइश ही न रह गयी थी, अब उसके पास उतने आदमी ही न थे जितनों की उसे अपनी हिफ़ाजत के लिए जरूरत थी।

पांक्राट्स में पहली चेक वर्दी हमने 11 फरवरी को देखी।

दूसरे दिन हम उन लोगों से परिचित होने लगे।

एक आता, कोठरी के अन्दर झाँकता, चौखट पर खड़ा अस्थिरता-पूर्वक पैर आगे-पीछे करता। फिर हमारी नज़रों का जवाब यकायक बड़ी हिम्मत से देता, वैसे ही जैसे बैयाँ-बैयाँ चलने वाला छोटा सा बच्चा एक बार किच-किचाकर जोर लगाये और उछल पड़े।

'कहिए, क्या हालचाल हैं जनाब?'

हम लोग मुस्कुराहट से जवाब देते, फिर वह भी जवाब में मुस्कुराता। फिर फट पड़ताः

'हम लोगों से खफा मत होइएगा। विश्वास कीजिए, हमें वहाँ उस चबूतरे पर चहलकदमी करना मंजूर, यहाँ आप लोगों पर पहरेदारी करना मंजूर नहीं। हमें यह काम करना पड़ा, लेकिन शायद-शायद इसका कुछ अच्छा नतीजा निकले...'

वह बड़ा खुश होता जब हम लोग उसे बताते कि हम लोग उसके बारे में और उन लोगों के पांक्राट्स से जाने की बाबत क्या सोचते हैं। इस तरह हम लोग पहले क्षण से ही मित्र हो गये। उसका नाम वितेक था, सीधा-सा नेकदिल लड़का था-वह पहला चेक सिपाही था जिसकी झलक हम लोगों ने अपनी कोठरी के दरवाजे के पास उस पहली सुबह देखी थी।

दूसरे का नाम तुमा था, वह पुराने ढंग का खास चेक सिपाही था। काफी खुरदुरे किस्म का और बड़ा शोरगुल मचाने वाला लेकिन मूलतः अच्छा, नेक-वही किस्म जिसे हम लोग चेक प्रजातंत्र की जेल में 'पॉप' कहा करते थे। उसे अपनी स्थिति कुछ खास न जान पड़ती। इसके विपरीत वह बड़े आराम और बेफिक्री से रहता और शांति स्थापित करता। किसी कोठरी में वह किसी को रोटी पकड़ा देता या सिगरेट, राजनीति छोड़ कर किसी भी चीज़ के बारे में किसी के भी संग बैठ कर गप्प ठोंकता और वक्त गुजारता। यह सब वह बड़े स्वाभाविक ढंग से करता, बिना इस बात को छिपाये कि उसकी नज़र में यही संतरी का काम है। इस बात के लिए पहली डाँट जो उसे पड़ी उससे वह और चौकन्ना तो हो गया, मगर बदला नहीं। वह अब भी पहले का वही पॉप था। उससे बड़ी कोई बात पूछने की हिम्मत न पड़ती लेकिन अगर वह आस-पास हो तो आसानी मालूम होती और सांस लेने में कठिनाई न होती।

तीसरा चेक पुलिसमैन गलियारे में चहलकदमी करता, तेवरियाँ चढ़ाये, खामोश, कुछ न देखता हुआ। उसके पास पहुँचने की जो कोशिशें होतीं उन पर वह कोई ध्यान न देता।

एक हफ्ते तक उसे गौर से देखने के बाद डैडी ने कहा, 'उसे चुनने से उन लोगों को कुछ खास फायदा नहीं हुआ। वह तो सब से असफल निकला।'

'या शायद सब से तेज़,' मैंने कहा, यों ही, बहस के लिए क्योंकि छोटी-छोटी बातों का विरोध करना ही इस कोठरी की ज़िन्दगी का मिर्च-मसाला है।

दो हफ्ते बाद मुझे लगा कि उस चुप्पे आदमी ने कायदे के थोड़ा खिलाफ मुझे हलके से आँख मारी। मैंने भी उसी इशारे से उसे जवाब दिया, और जेल में उस इशारे के एक हज़ार मतलब हो सकते हैं। लेकिन कुछ हुआ-गया नहीं। मुझे शायद धोखा हुआ।

खैर एक महीने बाद सारी बात साफ हो गयी। और यह चीज हुई बिल्कुल वैसे ही जैसे रेशम का कोया फोड़कर तितली निकल आये। त्योरियाँ चढ़ाये हुए वह कोया फूटा और उसमें से एक जीवित प्राणी निकल आया मगर वह तितली नहीं आदमी था।

'तुम स्मारक तैयार कर रहे हो,' डैडी इसमें के कई रेखाचित्रों के बारे में कहते।

मेरी बहुत इच्छा है कि मैं वैसा कर सकूँ जिसमें मैं उन साथियों की स्मृति जीवित रख सकूँ जो यहाँ पर और बाहर सच्चाई और बहादुरी के साथ लड़े, और खेत रहे।

लेकिन मैं उन जीवित लोगों का भी स्मारक बनाना चाहता हूँ जिन्होंने मुश्किल से मुश्किल हालातों में ऐसी सच्चाई और बहादुरी से हमारी मदद की, जो किसी से भी कम नहीं है। मैं पांक्राट्स के भुतहे गलियारों में से कोलिंस्की और इस चेक पुलिसमैन जैसे व्यक्तित्वों को जीवन के प्रकाश में लाना चाहता हूँ। इसलिए नहीं कि इससे उनका गौरव बढ़ेगा, बल्कि दूसरों के सामने उदाहरणस्वरूप, क्योंकि मनुष्य का कर्तव्य इस लड़ाई के बाद खत्म नहीं हो जायेगा और आदमी जब तक सही मानों में इन्सान नहीं बन जाते तब तक इंसान बनना हिम्मत और साहस की माँग करेगा।

पुलिसमैन यारोस्लाव होरा की कहानी बहुत छोटी-सी है। लेकिन उसमें एक पूर्ण मनुष्य की कहानी मिल जाती है।

राडनिको देश के एक सुदूर कोने में एक खूबसूरत-सा मगर गरीब और उजाड़-सा इलाका है। उसका बाप शीशा बनाने का काम करता था, और उसका जीवन कठिन था। मुल्क में जब काम हो तो ऊब और थकान, और जब बेकारी घर बनाये तो गरीबी-यही उसकी ज़िन्दगी थी। इसके दो ही नतीजे हो सकते थे : आदमी या तो घुटने टेक देता या एक बेहतर दुनिया के स्वप्न में गर्व से सिर ऊंचा करता। बेहतर दुनिया में विश्वास करने और उसके लिए लड़ने की खातिर उसका बाप कम्युनिस्ट हो गया। लड़कपन में यार्दा मई दिवस की परेड में साइकिल वाली टुकड़ी के संग पहियों में लाल फीता लपेटे घूमता। वह लाल फीता उसने वहीं छोड़ नहीं दिया बल्कि अपने दिल के भीतर कहीं रख लिया, जब वह खरीद-विभाग में काम करने

गया, जो कि उसकी पहली नौकरी थी, स्कोडा के कारखाने में।

बेकारी का संकट आया, फिर फौजी नौकरी, फिर पुलिस की नौकरी का मौका। पता नहीं इस बीच उसके दिल वाला वह लाल फीता क्या कर रहा था-शायद लपेटकर कहीं रख दिया गया था, शायद भूल भी चला था-खोया न था। एक दिन पांक्राट्स में उसकी ड्यूटी लगायी गयी। वह कोलिंस्की की तरह स्वेच्छा से नहीं आया था, एक उद्देश्य को लेकर, उसके हर पहलू को अच्छी तरह समझ-बूझकर। लेकिन पहली ही बार जो उसने कोठरी के भीतर झाँका तो उसे एक उद्देश्य की और अपने कर्तव्य की चेतना हुई। फीता जो लिपटा हुआ रक्खा था, अब खुला।

पहले उसे अपनी कर्मभूमि को अच्छी तरह समझना था और उसके मुकाबले में अपनी ताकत की नाप-जोख करनी थी। गहरे एकाग्र चिंतन से उसके माथे पर बल पड़ जाते, कहाँ शुरू करे कैसे शुरू करे। वह कोई पेशेवर राजनीतिज्ञ नहीं, धरती का एक सीधा-सच्चा पुत्र था। और उसके पास अपने बाप का तजुर्बा था; वह चरित्र का एक दृढ़ केन्द्र था जिसके चारों ओर उसके संकल्प रूप ग्रहण करते। जब उसने संकल्प कर लिया तो उसके नाक-भौं चढ़ाये हुए रेशम के कोये को फोड़कर एक इन्सान निकल आया।

अन्दर से वह बड़ा अच्छा आदमी था, अत्यन्त स्वच्छ, भावुक, और लजीला लेकिन जवाँमर्द। जिस चीज की बाजी लगाना जरूरी हो वह लगा देता। छोटी और बड़ी सभी चीजें जरूरी होती हैं, लिहाजा वह छोटी चीजें भी करता है और बड़ी भी। वह खामोशी से काम करता है, बिना किसी भी तरह के दिखावे के, खूब धीरे-धीरे समझ-बूझकर मगर बिना डरे। यह सब कुछ उसके लिए इतना नैसर्गिक है, उसके भीतर का आदेश। यह चीज करनी ही है तो उसके बारे में बात करके क्या होगा?

बस इतनी-सी उसकी कहानी है। यह एक व्यक्ति की पूरी कहानी है जिसे आज तक कई लोगों की जानें बचाने का श्रेय प्राप्त है। पांक्राट्स में एक आदमी ने अपना मनुष्योचित कर्तव्य पूरा किया, इसीलिए आज वे जिन्दा हैं और बाहर काम कर रहे हैं। वह निजी तौर पर उन्हें नहीं जानता और न वे ही उसे जानते हैं। और न शायद कोलिंस्की को ही वे जानते हैं, लेकिन आगे चल कर उनका परिचय होगा। इन दो काम करने वालों ने झट से एक दूसरे को पा लिया और सेवा करने के जो मौके उन्हें मिले उनका अच्छे से अच्छा उपयोग किया।

उनके उदाहरण को याद रखना। ऐसे दो आदमियों का उदाहरण जिनकी अकल उनके पास थी और जिनका दिल अपनी ठीक जगह पर था, और जिन्होंने दोनों का पूरा-पूरा इस्तेमाल किया।

'डैड स्कोरेपा'

अगर कहीं तूम्हें मौके से तीनों एक संग दीख जायें, तो समझ लो कि तुमने मेलजोल और भाईचारे की जीती-जागती तस्वीर देख ली - एस. एस. के सन्तरी कोलिंस्की की खाकी-हरी वर्दी, चेक पुलिस होरा की गहरी नीली वर्दी और जेल के ट्रस्टी डैड स्कोरेपा की हलके रंग की उदास सी वर्दी। वह तीन एक संग कम ही दिखायी पड़ते हैं - बहुत कम। और उसका सरल-सा कारण यह है कि उनके दिल सदा एक साथ रहते हैं।

जेल के क़ायदे के अनुसार गलियारों की सफाई और खाना देने आदि के काम 'सिर्फ ऐसे कैदियों को दिये जाने चाहिए जो बहुत ही विश्वसनीय कायदे-कानून की पाबन्दी करने वाले और दूसरे कैदियों से एकदम अलग-थलग हों। ऐसा कायदा है-मुर्दा कायदा, बिल्कुल बेजान। ऐसा कोई ट्रस्टी न हो सकता है न हुआ है। कम-से-कम गेस्टापो की जेलों में तो नहीं। यहाँ पर तो ट्रस्टी माध्यम है जिनके जरिये जेल का कलेक्टिव आज़ाद दुनिया के संस्पर्श में आता है जिसमें कि वह जी सके, और कुछ कह-सुन सके। कोई सन्देशा बीच ही में रोक लिये जाने पर या कोई गुप्त चिट्ठी समेत पकड़े जाने पर न जाने कितने ट्रस्टियों ने जान गँवायी होगी! लेकिन जेल के संघ का नियम निर्ममतापूर्वक उनके उत्तराधिकारियों से मांग करता है कि वे भी उसी जान-जोखिम काम को करें। वे चाहे इस काम को हिम्मत से करें चाहे डरकर, लेकिन संघ के लिए काम उन्हें करना ज़रूर पड़ता है। बस इतना है कि जो जितना डरता है उसके लिए उतना ही ज़्यादा खतरा होता है, और आगे-पीछे वह जरूर पकड़ा जाता है-तमाम अंडरग्राउंड काम की ही तरह यहाँ भी वही नियम लागू होता है।

यह सबसे कठिन अंडरग्राउण्ड काम है, ठीक उन लोगों के नीचे जो सारी विरोधी ताकतों को जड़ से उखाड़ फेंकने पर तुले हैं; संतरियों की निगाह-तले, उन जगहों पर रहकर जहाँ कि वे तैनात किये जायें, उन सख्त कायदों के मातहत जिनका बनाने वाला दुश्मन है-कठिन से कठिन परिस्थिति में यह काम करना होता है।

अंडरग्राउण्ड काम के बारे में बाहर तुमने जो कुछ भी सीखा हो, वह सब यहाँ नाकाफी है, लेकिन तुम्हें करना पहले के बराबर या उससे भी ज़्यादा पड़ता है।

जैसे बाहर गैरकानूनी काम में उस्ताद लोग होते हैं, वैसे ही यहाँ ट्रस्टियों में होते हैं। डैड स्कोरेपा तो बहुत ही मँजे हुए खिलाड़ी हैं, देखने में एकदम शान्त और नम्र, लेकिन काम में मछली की तरह फुर्तीले। सन्तरी उसकी तारीफ करते हैं-देखो, कैसे धीरे-धीरे इत्मीनान से अपने काम में लगा रहता है, कितना भरोसे का आदमी है, बस अपने काम से काम, ऐसी किसी बात से कोसों दूर जो कायदे के खिलाफ जाती हो। वे दूसरे ट्रस्टियों को उसका अनुसरण करने को कहते!

हाँ, दूसरे ट्रस्टी उसका अनुकरण करते हैं! वह सचमुच ट्रस्टियों का मुखिया है जैसा कि कैदी चाहते ही हैं। वह बाहरी दुनिया के साथ संघ का संस्पर्श कायम रखने में सबसे

शक्तिशाली, और साथ ही सबसे संवेदनशील माध्यम है।

वह हर कोठरी के रहने वालों को जानता है, हर आगंतुक को पहले क्षण से जानता है-वह क्यों यहाँ आया, उसका संपर्क किन-किन लोगों से है, बाहर उसका क्रांतिकारी आचरण कैसा था और उसके दोस्तों का कैसा था। वह हर 'केस' का गहरा अध्ययन करता है और उन्हें सुलझाने की कोशिश करता है। यह चीज़ जरूरी हो जाती है क्योंकि वह बाहर के लोगों को बचाना और कभी-कभी उन्हें अच्छी सलाह देना चाहता है।

वह दुश्मन को भी जानता है। हर सन्तरी को गौर से परखता है, उसकी आदतें, उसकी कमजोरियाँ, उसकी ताकत की बातें, उसकी किस बात पर निगाह रखनी चाहिए, उससे क्या काम लिया जा सकता है, कैसे उसे चकमा देना चाहिए, कैसे उसे भरमाना चाहिए। संतरियों की बहुत सी विशेषताएँ जिनका मैंने इस्तेमाल किया है, डैड स्कोरेपा ने मुझे बतायी थीं। वह उन सबको जानता है, उन सबकी अच्छी और ठीक-ठीक परिभाषा दे सकता है। ये सब बातें उस आदमी के लिए जरूरी हैं जो आज़ादी से गलियारों में घूमना और अच्छी तरह अपना काम करना चाहता है।

मगर सबसे बढ़कर, स्कोरेपा अपना कर्तव्य अच्छी तरह समझता है। वह एक कम्युनिस्ट है जो जानता है कि हर क्षण उसे एक कम्युनिस्ट की तरह रहना चाहिए, और ऐसी कोई जगह या वक्त नहीं है जब वह हाथ पर हाथ धरकर बैठ सके। मैं समझता हूँ कि यहाँ इस बड़े से बड़े खतरे के बीच और सख्त से सख्त दबाव में उसे उसके योग्य सबसे अच्छी जगह मिली है। यहाँ पर उसने विकास भी किया है।

उसमें अद्‌भुत लचीलापन है, हर रोज़ हर घंटे नयी परिस्थितियाँ पैदा होती हैं जिनको हल करने के लिये नये तरीके निकालने पड़ते हैं। ये तरीक़े वह बहुत फुर्ती से और बड़ी चालाकी से निकालता है। कभी-कभी एक मिनट से भी कहीं कम वक्त मिलता है। उतने ही में वह कोठरी के दरवाज़े पर दस्तक देता है, दरवाज़े के छोटे से छेद में से एक अच्छी तरह तैयार किया हुआ सन्देसा सुनता है और उसे गलियारे के दूसरे सिरे पर की कोठरी में बिल्कुल साफ-साफ और ठीक-ठीक पहुँचा देता है, उस एक क्षण में जब कि उसका संतरी नीचे जाता है और उसकी जगह पर दूसरा संतरी सीढ़ी चढ़कर ऊपर आता है, उस एक छोटे क्षण में। वह बड़ा चौकस आदमी है और कभी घबराता नहीं। जेल की सैंकड़ों चिट्ठियाँ उसके हाथ से आयी-गयी होंगी। लेकिन आज तक एक नहीं पकड़ी गयीं, और न कभी किसी ने उस पर शक किया।

वह अपने सहज ज्ञान से जान जाता है कि कौन कठिनाई में है, किसे बाहर की परिस्थिति के बारे में चार शब्द सुनाकर हिम्मत बढ़ाने की जरूरत है। वह जानता है कि किसे वह अपनी उन खास गम्भीर वात्सल्यपूर्ण आँखों से देखकर प्रोत्साहित कर सकता है, कब निराशा को हराने के लिए ताकत की जरूरत होती है। वह जानता है कि किसे हिस्से से ज़्यादा एक रोल या एक बड़ा चम्मच शोरबा देना चाहिए जिसमें भूख की सज़ा के अगले दौर का सामना करने के लिए उसके शरीर में ताकत रहे। वह ये सब बातें अपने लम्बे और गहरे तजर्बे और कोमल भावनाओं के द्वारा जाना जाता है-और फिर जो जरूरी होता है वह करता है।

यह है डैड स्कोरेपा। एक सैनिक, ताकतवर और निडर। एक असल इन्सान।

मैं तुम लोगों से, जो किसी दिन इसे पढ़ोगे, कहना चाहता हूँ कि स्कोरेपा सिर्फ एक इन्सान नहीं, बेहतरीन किस्म का ट्रस्टी है, जो उस काम को, जिसकी माँग अत्याचारी शासन उससे करता है, पीड़ितों की सेवा में बदल देता है। यहाँ पर सिर्फ एक डैड स्कोरेपा है लेकिन दूसरे इन्सानी साँचे के और लोग भी हैं जो इंकलाब को मदद पहुँचाते हैं और उतनी ही जितनी कि वह। मैं उन सबके, जो यहाँ पांक्राट्स में हैं और पेचेक बिल्डिंग में, स्केच खींचना चाहता था, लेकिन अफसोस है कि अब सिर्फ कुछ घंटे बचे हैं-जो कि बहुत थोड़ा है 'उस गाने के लिए जिसे गाने में इतना थोड़ा सा समय लगता है लेकिन जिसके पीछे जीवन का इतिहास इतना लम्बा है।'

अब सिर्फ कुछ और नामों के लिए वक्त है (बहुतों में से कुछ उदाहरण) जिन्हें याद करना चाहिएः

'रेनेक'- जोज़ेफ़ टेरिंग्ल बहुत सख्त, गर्म कुर्बानियों वाला आदमी है जो पेचेक बिल्डिंग और उसके अंदर संघर्ष के बहुत से इतिहास के संग गुंथा हुआ है वैसे ही जैसे उसका नेकदिल लंगोटिया यार, जो बेरविदू।

डाक्टर मिलोश नेडवेड, खूबसूरत और शरीफ नौजवान जिसने हमारे कैदी साथियों की रोज़ मदद करने की कीमत ओसवाइकिम में अपनी ज़िन्दगी से चुकायी।

आर्नोस्ट लॉरिंज़, जिसकी पत्नी इसलिए मार डाली गयी कि पति ने अपने साथियों के संग विश्वासघात करना मंजूर नहीं किया। उसने एक साल देर से मरना कबूल किया जिसमें कि वह अपने दोस्तों, नम्बर 400 के ट्रस्टियों और उनके पूरे संघ को बचा सके।

वाशेक रेज़कू, जिसके अद्‌भूत उल्लास को कोई नहीं मार सका।

बन्द मुँह की, अद्‌भूत लगन की ऐनी विकोवा, जिसे मार्शल लॉ के दिनों में मार डाला गया।

स्प्रिंगर, वह चतुर, सदा मगन रहने वाला 'लाइब्रेरियन' जो अपना जरूरी काम करने के लिए सदा रास्ता निकाल लेता था।

बिलेक, वह कोमल शरीर का युवक...

ये सिर्फ उदाहरण हैं, बानगियाँ।

व्यक्तित्व, बड़े या छोटे, लेकिन सदा वास्तविक चरित्र-केवल आकृतियाँ नहीं, कभी नहीं।

...क्रमशः जारी

अशोक की धर्म-विजय

■ मुक्तिबोध

...पिछले अंक से जारी

अशोक का नाम विश्व के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित है। दुनिया में कौन ऐसा सुशिक्षित व्यक्ति है, जो अशोक का नाम नहीं जानता? हमारे राष्ट्र-ध्वज में जो चक्र बना है, राजकीय मुहर पर जो सिंहाकृति है, वह अशोक की देन है। आज भी विश्व-भर के शान्तिप्रिय स्वप्नद्रष्टा, जिन्होंने मानव की उन्नति-क्षमता और विकास-सामर्थ्य पर अपना विश्वास नहीं खोया है, वे सब अशोक का नाम आते ही उसके प्रति आदर भाव से भर उठते हैं। ऐसा क्यों है? आखिर क्यों!

अशोक भारत में आज से लगभग दो हज़ार दो सौ इकत्तीस साल पहले राज करता था। हम नहीं जानते कि उसका बाल्यकाल कैसे बीता और उसका मानसिक विकास कैसे हुआ। इतना-भर मालूम है कि कथा के अनुसार उसने तक्षशिला का विद्रोह दबाया था। दूसरे यह कि वह अपने पिता सम्राट् बिन्दुसार की ओर से मालवे में राज्यपाल (गवर्नर) नियुक्त किया गया था। सम्भवतः उसकी राजधानी उज्जैन थी, या शायद विदिशा (आजकल का भेलसा) उसके सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि राज-सिंहासन प्राप्त करने के लिए उसने अपने भाइयों का वध किया। किन्तु इस बात को सब इतिहासकार नहीं मानते। बहरहाल, यह सही है कि वह ई.पू. सन् 273 में सम्राट घोषित किया गया और ई.पू. सन् 269 में उसका राज्याभिषेक हुआ।

सम्राट् होने के बाद अशोक अधिकांश समय अश्वशाला और उद्यानों में बिताता। वह विलासप्रिय था। खाने-पीने का शौकीन था। मोर का गोश्त उसे ख़ास तौर से पसन्द था। अपना कुछ समय वह शिकार में भी बिताता।

इस प्रकार उसके राजत्व काल के प्रथम आठ वर्ष सुख और शान्ति से व्यतीत हुए कि इतने में कलिंग-विद्रोह का समाचार आया।

अशोक ने भयानक संग्राम किया और उसे कुचल दिया। अशोक स्वयं कहता है-"इस युद्ध में एक लाख लोग मारे गये, इससे कई गुनी अधिक संख्या में लोग घायल हुए और डेढ़ लाख लोगों को देश के बाहर निकाल दिया गया।" यह घटना ई.पू. सन् 261 की है।

निःसन्देह कलिंग के सैनिकों ने जल्दी ही घुटने नहीं टेके होंगे। उन्होंने लम्बे अरसे तक जमकर मोर्चा लिया होगा। उन्होंने प्रण किया होगा कि मारेंगे या मरेंगे। किन्तु, उनमें इतना मनोबल कैसे पैदा हुआ, उनमें इतनी भयानक विद्रोहाग्नि क्यों भड़की?

हम इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते। इतनी भयानक विद्रोहाग्नि का एक ही कारण हो सकता है। और वह है-राजकीय अत्याचार। नहीं तो कोई कारण नहीं है कि विद्रोही जल्दी आत्मसमर्पण न कर दें! सम्भव है कि निरंकुश राजतन्त्र के भीतर, राजा की व्यक्तिगत कार्य-दक्षता के अभाव में, व्यक्तिगत देख-रेख और जांच-पड़ताल के अभाव में, सर्वाधिकार-प्राप्त राज-कर्मचारियों ने कलिंग की प्रजा पर अत्याचार किये हों अथवा उन्हें अत्याचारपूर्ण नियमों के अधीन कर रखा हो। सम्भव है कि बिन्दुसार के समय से ही, प्रशासन-व्यवस्था अधिक शिथिल और अधिक अत्याचारी हो गयी हो और नवीन राजा अशोक ने भी उस बढ़ती हुई शिथिलता और कठोरता की ओर ध्यान न दिया हो, प्रजा की आवाज़ न सुनी हो।

संक्षेप में, कलिंग युद्ध, युद्ध नहीं था, वह नरमेध था, व्यापक मानव-संहार था। इस नरमेध का नेतृत्व स्वयं अशोक कर रहा था। रणक्षेत्र के करुण और दयनीय, वीभत्स और कठोर दृश्यों को देखकर उसे आत्म-यन्त्रणा हुई। वह पश्चाताप की अग्नि में जलने लगा।

अशोक एक महत्वाकांक्षी राजपुरुष था। किन्तु, उसकी महत्वाकांक्षा, पराक्रम की लालसा, उसकी तृष्णा, सभी पश्चाताप की अग्नि में जलने लगीं। रणक्षेत्र में अपंगों को देख, मारे गये सैनिकों की रोती हुई माताओं और बहनों को देख, जलते हुए घरों और अधजले पेड़ों के ठूंठों को देख, उसके हृदय में अपार करुणा घर कर गयी। विजय-श्री से विभूषित अशोक का मस्तक नत हो उठा, कन्धे ढीले हो गये, गले में आँसुओं का काँटा अटका, तन में ग्लानि की ठण्डी-ठण्डी सुरसुरी दौड़ गयी। उसने संपूर्ण प्रायश्चित करने का संकल्प किया।

प्रायश्चित : अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य भी, वृद्धावस्था में, तापस जीवन की ओर उन्मुख हुए थे। किन्तु वे व्यक्तिगत मोक्ष के कामी थे। अशोक को अपनी भर-जवानी में पाप का दाग लग गया। साथ ही राजशक्ति कितना अनाचार कर सकती थी, उसका ज्वलन्त उदाहरण उसके ही हाथों उसी की आंखों के सामने आया। रणदक्ष, सेनाध्यक्ष सम्राट अशोक ने अपने जीवन की दिशा ही परिवर्तित कर दी-केवल व्यक्तिगत पाप-क्षालन करने के लिए नहीं, वरन् इस पूरे संसार से अनाचार को दूर करने, समस्त जनता का, सम्भावी क्रूर व्यक्ति का, सम्भावी अत्याचारी का, सम्भावी दुष्ट का, पहले ही से, हृदय-संस्कार करने के लिए। यह एक ऐसा स्वप्न था, जिसको कार्यान्वित करने के लिए उसने कुछ भी न उठा रखा।

उपगुप्त : उस समय, बौद्ध धर्म भारत के विशेष-विशेष प्रदेशों और क्षेत्रों में ही सीमित था। अंग, बंग और उत्तर तथा दक्षिण बिहार के अतिरिक्त, उसके प्रमुख केन्द्र दो और थे। एक मथुरा और दूसरा उज्जयिनी। यह सर्वविदित था कि बौद्ध धर्म भावुक करुणाप्रधान धर्म है। इसलिए वह ब्राह्मण धर्म के प्रति आकृष्ट न होकर बौद्ध धर्म की ओर ही खिंचा। उसके सौभाग्य से उसे मथुरा के एक बौद्ध

विद्वान सन्त उपगुप्त का सम्पर्क प्राप्त हुआ। सम्भवतः उनके प्रभाव में आकर उसने भारत में तथा उसके बाहर, बौद्ध धर्म का प्रचार किया।

प्रयत्न : अशोक ने धर्म-विजय की केवल घोषणा नहीं की, वरन् वह स्वयं देश में भ्रमण करता और व्यक्तिशः बौद्ध धर्म का प्रचार करता। यही नहीं, उसके उच्च सरकारी अधिकारियों का एक बड़ा काम यह भी था कि वे स्वयं राजा के पद-चिन्हों पर चलते हुए, अपने सरकारी काम-काज के अलावा, धर्म-प्रचार करें। निःसन्देह, यह बड़ा कठिन काम था। कई उच्च राज-कर्मचारी उससे नाराज़ रहे होंगे, किन्तु कुछ कह न पाते होंगे । बौद्ध धर्म के अन्तर्गत बढ़ते हुए मतभेदों के बारे में अशोक को बड़ी चिन्ता थी। उसने पवित्र स्थानों पर शास्त्रार्थ के लिए सभाएँ आयोजित करवायीं तथा तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन किया। यह संगीति बहुत बड़ा बौद्ध सम्मेलन था, जिसमें अनेक विवादास्पद विषयों पर चर्चा हुई थी। इस सम्मेलन में बौद्धों के मतभेद खुलकर सामने आ गये।

धर्म-नीति : किन्तु, अशोक दार्शनिक नहीं था, न दार्शनिक बनने की उसे कोई इच्छा ही थी। वह मानव-कल्याण तथा करुणा से प्रेरित सदाचारवाद पर ज़ोर देता था। इसलिए, उसने बौद्ध धर्म के केवल वे ही सिद्धान्त चुने, जिनका सम्बन्ध उच्च नैतिक, आध्यात्मिक और व्यावहारिक जीवन से था। वह सिद्धान्त-शास्त्री नहीं था, धर्म-शास्त्री नहीं था। विद्वान बौद्ध सन्त उपगुप्त स्वयं करुणा के अवतार थे (रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'संन्यासी उपगुप्त' शीर्षक के अन्तर्गत, बहुत ही सुन्दर कविता लिखी है, जिसमें उपगुप्त का भावुक करुणामय व्यक्तित्व उभरकर आ गया है)। उनके प्रभाव से, अशोक को वास्तविक मानव-दृष्टि प्राप्त हुई थी।

अतः उसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए केवल वे ही उपदेश चुने, जो सभी धर्मों में समान रूप से पाये जाते हैं, साथ ही हर एक को सहज-बुद्धि सम्मत हो सकते हैं। उन मानव-सिद्धान्तों पर उसने बहुत ज़ोर दिया। उसने बौद्ध धर्म के मानव-करुणापन्न-नैतिक सिद्धान्तों का, (न कि दार्शनिक सिद्धान्तों का) प्रचार किया। उसने कहा कि मनुष्य-मनुष्य के बीच परस्पर सद्भावना तथा समानता का बर्ताव हो। मनुष्य अपनी क्षुद्र मनोवृत्तियों तथा हीन मनोविकारों का दमन करे, हृदय को उदार बनाये, पवित्र आचरण करे, पशुओं पर दया करे तथा अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता का प्रयोग करे। दूसरे शब्दों में, मनुष्य अपने भीतर की पशुता का दमन करते हुए, अन्तःकरण में सच्ची मनुष्यता जाग्रत करे।

इसलिए, उसने न केवल ऐसे सिद्धान्तों को प्रचारार्थ चुना जो सहज-बुद्धि-सम्मत थे, वरन् यह भी (महत्वपूर्ण बात है) कि उसने साम्प्रदायिक वैमनस्य को दूर करने के महान् प्रयत्न किये। उसने साम्प्रदायिक समस्याओं के निराकरण के उद्देश्य से स्पष्ट सिद्धान्तों को कार्यान्वित किया। वे इस प्रकार हैं:

(1) **मूल :** विभिन्न धर्मों में जो सिद्धान्त समान रूप से पाये जाते हैं, उनका प्रचार करना, उन पर ज़ोर देना, क्योंकि वे सिद्धान्त, वस्तुतः मानव-एकता के प्रमाण हैं तथा मानव-एकता स्थापित करने के लिए केवल इन्हीं सिद्धान्तों का सर्वाधिक और व्यापकतम प्रचार होना चाहिए। साथ ही प्रत्येक का यह कर्तव्य है कि वह इन्हीं सर्वधर्मसम्मत मूल सिद्धान्तों पर ज़ोर दे।

(2) **वाचा गुति :** अन्य धर्मों के विरुद्ध ज़हर न उगला जाए, उनकी आलोचना न की जाये, मुंह से ऐसे शब्द न निकलें, जिनसे यह प्रतीत हो कि अन्य धर्म हीन हैं और हमारा ही धर्म श्रेष्ठ है। दूसरे धर्म को हीन भाव से देखना, उसके अनुयायियों का हृदय दुखाने का प्रयत्न करना, पवित्र आचरण नहीं है, सदाचार नहीं है, अनाचार है।

(3) **समवाय :** साथ ही यह आवश्यक है कि विभिन्न धर्मावलम्बियों में मेल-जोल बढ़े; परस्पर सद्भाव उत्पन्न हो, एक दूसरे का ज्ञान हो। इसलिए यह आवश्यक है कि सभी धर्मों के उपदेशों को जनता तक पहुंचाने के लिए, सर्वधर्मसभाएँ की जाएं, जहां कि जनता एक साथ बैठकर सभी धर्मों के उच्च तत्व ग्रहण कर सके।

(4) **बहुश्चुत :** अर्थात् यह आवश्यक है कि हमारा ज्ञान केवल एक ही सम्प्रदाय या धर्म में ग्रन्थों तक ही सीमित न रहे वरन् सभी धमो ं के मूलभूत ग्रन्थों का अध्ययन करके हम वास्तविक उदार मानव दृष्टिकोण तथा सच्चा धर्म-भाव ग्रहण कर सकें।

सम्राट अशोक ने यदि बौद्धों के विहारों और मठों को सहायता पहुंचायी तो ब्राह्मणों के मन्दिरों को भी। उसने, प्रजा के प्रति एक सम्राट् की सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से ही, आजीवकों, ब्राह्मणों, तीर्थंकों तथा निर्ग्रन्थों तक को दान दिया, और तरह-तरह की सहायता पहुंचायी। अपने राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष में उसने आजीवकों को एक पर्वत के भीतर कुछ गुफाएं प्रदान की। आजीवक सम्प्रदाय अशोक के समय बहुत प्रसिद्ध हो गया था।

राजशक्ति का प्रयोग : निःसन्देह, उसके राज-कर्मचारी जो विष्णुगुप्त कौटिल्य की परम्परा में बड़े (हुए) होंगे, उन्होंने जब यह देखा होगा कि सम्राट् की विशेष आज्ञा से जेल के दरवाज़े खोल दिये गये हैं और क़ैदी रिहा हो चुके हैं, और होते जा रहे हैं तो उन्हें बड़ा दुख हुआ होगा। अशोक ने केवल अति-भयानक अपराधों के बन्दियों को, जिन्हें मृत्युदण्ड दिया गया था, रिहा नहीं किया, किन्तु उनका वध कुछ-दिनों के लिए रुकवा दिया। इसी प्रकार उसने एक आदेश द्वारा ऐसे पशु-पक्षियों का वध निषिद्ध घोषित किया जिनका मांस सामान्यतः खाया नहीं जाता था, किन्तु आखेट के प्रेमी जिन्हें अकसर मारा करते थे।

देश में मानव-एकता स्थापित करने का उद्यम करते हुए, अशोक ने व्यापार-व्यवसाय की वृद्धि के हेतु तथा यात्रियों के सुख के लिए, बड़े-बड़े रास्ते बनवाये, उनके किनारे-किनारे पेड़ लगवाये, स्थान-स्थान पर विश्राम-गृह तथा धर्मशालाएं बनवायीं, चिकित्सालय स्थापित किये, और ऐसे वृक्ष लगाने की आज्ञा दी जो रोगियों के रोग को दूर करने में सहायक हों।

स्तम्भ-स्तूप-शिलालेख : अशोक ने धर्म-प्रचार के लिए, देश के विभिन्न स्थानों और दिशाओं में स्तम्भ और स्तूपों का निर्माण किया, जिन पर उसने अभिलेख अंकित किये। वह हमारे लिए लगभग 30 अभिलेख छोड़ गया। इन अभिलेखों में सदाचार की शिक्षा दी गयी है। ये अभिलेख उत्तर-पश्चिम के सीमान्ती प्रदेशों से लेकर तो सौराष्ट्र और बम्बई तक हैं और वहां से लेकर बिहार तक हैं। वे साम्राज्य के हर भाग में बिखरे हुए हैं। ये अभिलेख-14 शिलालेखों, 7 स्तम्भ-लेखों और 7 अपेक्षाकृत छोटे अभिलेखों के रूप

में-अभी भी वर्तमान हैं। इन अभिलेखों से अशोक की आवाज़ हज़ार साल पार करती हुई हम तक आ ही जाती है। उसमें पूज्य व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा करने का, अहिंसा पालन करने का, माता-पिता की आज्ञा मानने का, प्रेम और सद्भाव से रहने का उपदेश दिया गया है। उसके स्तम्भ-आलेख, अन्य स्थानों के अतिरिक्त, कौशाम्बी, सांची और सारनाथ में हैं। वे तत्कालीन कला के अद्भुत नमूने हैं। इन अभिलेखों से उस समय के जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है। ये आलेख सैंकड़ों वर्षों की गरमी-सरदी और वर्षा सहते रहे, फिर भी मिटे नहीं हैं।

विदेशों से सम्पर्क : अपने आध्यात्मिक उद्देश्यों और उपदेशों से विदेशों को परिचित कराने के लिए, अशोक ने सीरिया के अधिपति एन्टीओकस द्वितीय, मेसिडोनिया के ऐन्टीगोनस गोनातास, मिस्र के फिलाडेल्फस तथा साइरिन के मागास, तथा एपीरस के अलेक्जैण्डर के दरबारों में अपने धर्म-महामात्य (धर्म-राजदूत) नियुक्त किये। साथ ही, उसने मध्य एशिया के खोतन तथा उसके पूर्व के देशों के यहां भी अपने धर्म-महामात्य भेजे। भारत के चोल, चेर, पाण्ड्य राजाओं के दरबार में भी उसके राज-प्रतिनिधि नियुक्त थे। इन नियुक्तियों का उद्देश्य उन-उन देशों की प्रजाओं को, धर्म के मूल तत्वों से अवगत कराना तथा सदाचार और पवित्रता का प्रचार करना था।

धर्म-प्रचारक : सम्राट अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को लंका तथा बर्मा में धर्म-प्रचार के लिए भेजा। भारत के विभिन्न भागों में तो ये धर्म-प्रचारक काम करते ही थे, वे विदेशों में भी गये। मध्य एशिया, पश्चिमी एशिया तक वे जा पहुंचे। उधर उन्होंने पूर्वी एशिया में, खास तौर से खोतन में प्रवेश किया।

मध्य-पूर्व एशिया में भारतीय उपनिवेश

काश्मीर के पूर्व-उत्तर की सीमा पर, सिंगक्यांग नामक प्रदेश है। उसमें तारीम, यारकन्द आदि नदियां बहती हैं। तारीम अपनी सहायक नदियों को लेकर लोबनोर नामक एक रेगिस्तानी खारे पानी की झील में गिरती है। अशोक के काल में वहां आर्यवंशीय ऋषिक (तोखारी) जातियां रहती थीं। अशोक ने तक्षशिला के अपराधियों को जेलों से रिहा करके उन्हें वहां बसने के लिए भेज दिया। वहां उन्होंने भारतीय उपनिवेश क़ायम किये। आर्यवंशीय जातियों में ये भारतीय उपनिवेश खप गये। अशोक ने वहां भी धर्म-प्रचार किया। आगे लगभग एक हज़ार दो सौ वर्ष तक ये भारतीय उपनिवेश वहां बने रहे। चीन ने, इस क्षेत्र में बाद में प्रवेश किया। खोतन वहां की मुख्य नगरी थी। वह शहर बौद्ध धर्म का एक केन्द्र था।

प्रचार की भाषा : अन्तर्प्रान्तीय सम्पर्क के लिए, अशोक ने पाली भाषा का प्रचार किया। पाली तात्कालीन प्राकृतों के अधिक निकट थी। साथ ही वह, स्वयं पुरानी प्राकृत होने के कारण, अपनी अपेक्षाकृत प्राचीनता के कारण, विभिन्न प्राकृत भाषा-भाषी लोगों के लिए अधिक माननीय और सम्माननीय भी थी। अशोक के काल में पाली राजभाषा तो बन ही गयी, उसने राष्ट्रभाषा का रूप भी धारण कर लिया। अशोक के आदेश पाली में ही लिखे मिलते हैं।

अशोक का साम्राज्य : दक्षिण का कुछ अन्तिम भाग छोड़कर शेष भारतवर्ष में, तथा अफ़गानिस्तान बलूचिस्तान तक, और उसके आगे उत्तर में, अशोक का साम्राज्य फैला हुआ था। अशोक के धर्मोत्साह ने भारत में सुदीर्घ काल तक शान्ति बनाये रखी तथा विदेशों में भी भारतीय सत्ता का प्रभाव (जैसे खोतन में) विस्तृत किया। दुःख की बात यह है कि आगे के शासकों ने उसकी नीति का पालन नहीं किया।

अशोक की महानता इसमें है कि वह न केवल भारतीयों को ऐक्य-सूत्र में बद्ध करना चाहता था, वरन् विश्व-भर को। अहिंसा पर उसका बल, प्रेम और सद्भाव पर उसका ज़ोर, क्या बताता है? मनुष्य के अन्तःकरण की उदास वृत्तियों को प्रोत्साहित करके और उन्हें सक्रिय बनाकर, वह विश्व-शान्ति, विश्व-मैत्री और बन्धु-भाव द्वारा मानव एकता प्रतिष्ठित करना चाहता था। इसलिए 'धर्म-प्रचार' उसका अद्वितीय विलक्षण प्रयोग था, जिसने उसे पूरे विश्व के इतिहास में अमर बना दिया। साथ ही, उसका यह परिणाम भी हुआ कि बौद्ध धर्म के सूत्र में बंधकर, अनेकानेक देशों के लिए भारत एक पुण्यभूमि, पवित्र भूमि बन गया। उन देशों में भारत की केवल ख्याति ही नहीं बढ़ी, वरन् स्वयं अशोककालीन भारत ने अनेकानेक विदेशी तत्व आत्मसात् कर लिये। अशोक का भारत, विश्व का एक ज्योतिस्तम्भ था, यह क्यों भुलाया जाए।

मृत्यु के बाद : अशोक की मृत्यु दयनीय स्थिति में हुई। उसका खज़ाना खाली हो गया। निरन्तर दान ने, तथा निर्माण ने, धर्म-प्रचार में लगने वाले व्यय ने, उसे कंगाल बना दिया। उसके उत्तराधिकारी असंतुष्ट हो उठे। असंतुष्ट उत्तराधिकारियों से स्वार्थग्रस्त राज-कर्मचारियों ने सांठ-गांठ की।

किन्तु उसे कोई पश्चाताप नहीं था। आदमी के सामने दो ही रास्ते हैं-या तो वह सच्चा मनुष्य बने या पशु। उसने पशुत्व से इन्कार कर दिया था। अपनी उदात्त मानसिक भूमि पर रहकर, उसने ई.पू. 236वें वर्ष में प्राण त्याग दिये।

अशोक की मृत्यु के कुछ ही वर्षों बाद, प्रतापी मौर्य साम्राज्य सदा के लिए अस्त हो गया। उसके अन्तिम राजा का नाम जानने की भी कोई आवश्यकता नहीं है।

...क्रमशः जारी

साभार : मुक्तिबोध रचनावली, भाग 6

***isd* इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी**

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस,

62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067

टेलीफोन 011-26177904, 46025219 टेलीफैक्स 011-26177904

ईमेल : notowar.isd@gmail.com, notowar@rediffmail.com / वेबसाइट : isd.net.in

केवल सीमित वितरण के लिए